10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 591

किसान-क्रांति और उन्मुक्त फ़िलॉलॉजी

रणजीत गुहा का नया अर्थ-ग्रहण

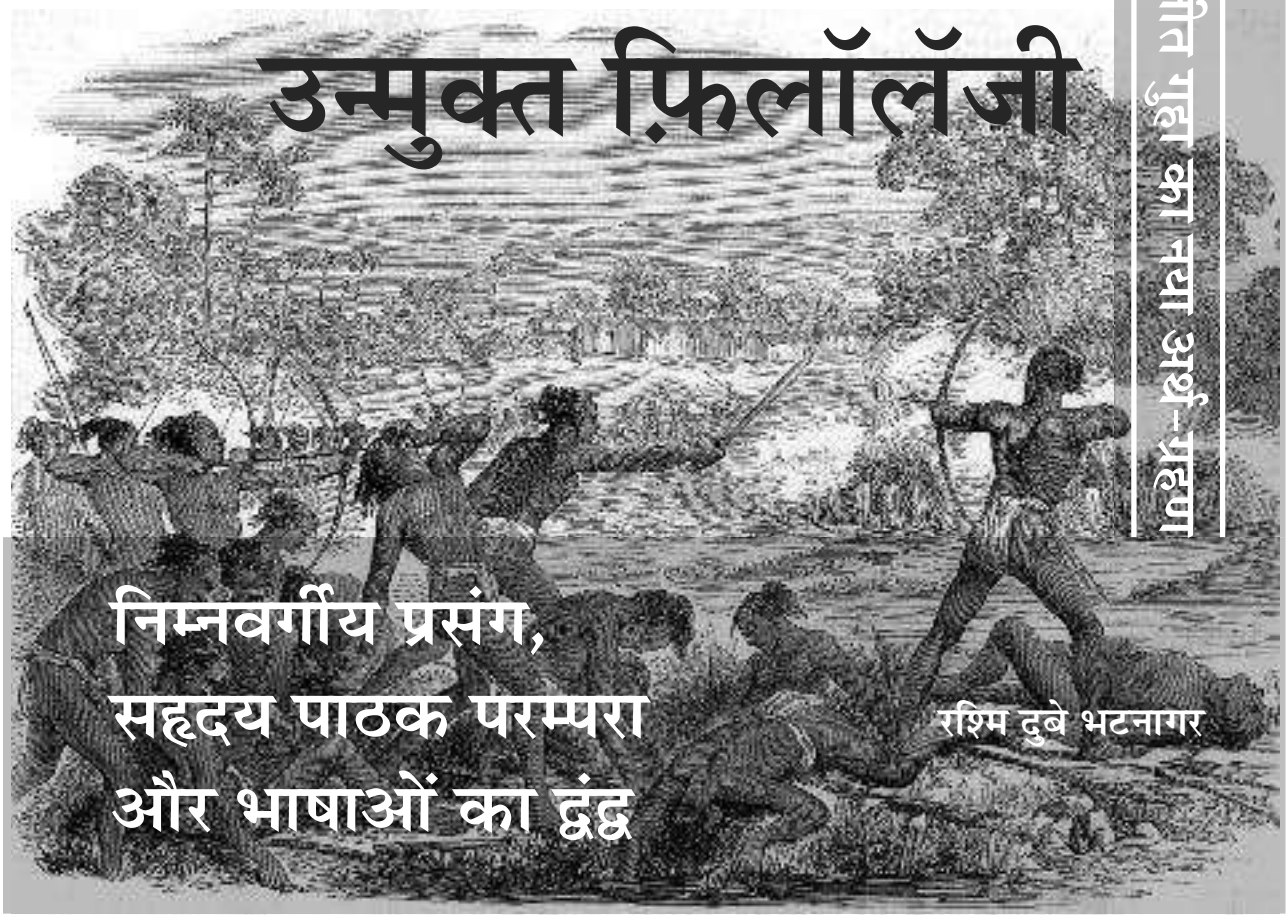

निम्नवर्गीय प्रसंग, सहृदय पाठक परम्परा और भाषाओं का द्वंद्व

रश्मि दुबे भटनागर

नेटिव इनफ़ेंट्री की 49वीं ब्रिटिश रेजिमेंट पर संथाल विद्रोहियों का हमला. यह चित्र 23 फ़रवरी, 1856 के द इलस्ट्रेटेड लंडन न्यूज़ में प्रकाशित हुआ था.

इतिहास-लेखन में रूपक और तुलना के बीच एक अंतर्संबंध है। इसके तहत एक विशेष परिस्थिति में तुलना अपने एकांगी अर्थ से परे जा कर अर्थ-बहुल रूपक की शक्ल अख़्तियार कर लेती है। तुलना ऐसा तराजू है जिसे इतिहासकार यह सोच कर पकड़ता है कि तराजू का संतुलन बना रहेगा और पाठक को उपमा की चमक-दमक में खो जाने से बचाया जा सकेगा। रणजीत गुहा किसान-क्रांति को एक तरह की नायिका के रूप में ग्रहण करते हैं। उनके रूपक हैं भाषा (ब्रज, अवधी, भोजपुरी, संथाली और अन्य जनपदीय भाषाएँ), बोली और ज़ुबान (उर्दू, रेख़्ती)। इस लेख में तुलना और रूपक के इसी समीकरण का भाष्य करने का प्रयास किया जाएगा।

गुहा 1983 में प्रकाशित अपनी विख्यात रचना *ऐलिमेंटरी आस्पेक्ट्स ऑफ़ पैजेंट इंसर्जेंसी इन कोलोनियल इण्डिया* (जिसे इस लेख में *ऐलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* बुलाया जाएगा) में जब किसान विद्रोहियों की चर्चा करते हैं तो उससे उनका मतलब महज़ प्रचलित क़िस्म के मैदानी किसान से नहीं

प्रतिमान

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 592

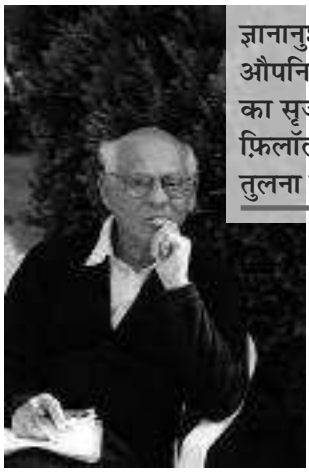

ज्ञानानुशासनों की दीवारों पर गुहा एक ऐसी सुरंग बनाते हैं जिससे औपनिवेशिक हिंदुस्तान का निम्नवर्गीय इतिहास जीवित हो कर हमारे अतीत का सृजनात्मक अंग बन जाता है। इस सुरंग का निर्माण करने के लिए फ़िलॉलॅजी गुहा के लिए एक औज़ार भी है और दार्शनिक प्रवृत्ति भी। वह तुलना का माध्यम भी है और क्रांति का एक मापदण्ड भी।

होता, बल्कि उन्होंने झूम खेती करने वाले आदिवासी किसानों, *सिपह-पेशा* करने वाले किसानों और क़स्बाई पेशों से जुड़े किसानों का भी अपनी इस केंद्रीय अभिव्यक्ति में समावेश किया है। गुहा ने अपनी इस रचना में मार्क्स के लेख *लुई बोनापार्ट की अट्ठारहवीं ब्रूमेर* (1852) के रूपक को याद किया है,[1] अनुकरणकारी नहीं बल्कि उन्मुक्त स्वावलम्बी चिंतक के रूप में। मार्क्स ने लिखा था कि भले ही अतीत से उधार ली गयी भाषा और वेषभूषा में हो, पर क्रांति के ज़रिये मनुष्य अपना इतिहास ख़ुद बनाता है। मार्क्स और गुहा के दृष्टिकोण में भाषा का पहला और सबसे प्रबल रूप यह है कि भाषा तुलना का माध्यम बन कर उभरती है। मेरे विचार में तुलना के माध्यम के तौर पर भाषा क्रांति के उस पहलू पर रोशनी डालती है जिसमें क्रांति के अधूरेपन, सफलता-विफलता और मानवीय प्रयास की झलक निहित है। मार्क्स के कथन में यह सम्भावना भी छुपी हुई है कि क्रांति और भाषा के संबंध में भाषा तुलना का माध्यम मात्र ही नहीं है, वरन् वह क्रांति की सफलता का मापदण्ड भी बन सकती है। चूँकि सफल क्रांति एक नवीन भाषा की रचना करती है और अधूरी क्रांति अतीत से उधार माँगी हुई भाषा की गिरफ़्त में रहती है, इसलिए *ऐलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* के पहले अध्याय 'निगेशन' के अंत में गुहा कहते हैं कि किसान विद्रोही उधार माँगी हुई भाषा का प्रयोग करते थे। यह भाषा सरकार, साहूकार और ज़मींदार की भाषा थी। गुहा के मुताबिक़ किसानों को केवल यही भाषा आती थी। क्रांति नवनिर्माण के लिए होती है, पर उसकी भाषा यहाँ नयी नहीं है। इसीलिए गुहा इसे विरोधाभास के रूप में पेश करते हैं कि किसान विद्रोही नये समाज का निर्माण क्रांति द्वारा करना तो चाहते थे, पर नवीनता की नयी भाषा उनके पास नहीं थी। गुहा कहते हैं कि किसान क्रांतिकारी उस नौसिखिए की तरह है जो एक नयी भाषा को सीखते हुए भी उसका अनुवाद अपनी मातृभाषा में करता चलता है।[2] इस तरह 'निगेशन' में गुहा मार्क्स की भाषा संबंधी तुलना को नया अवतार देने में कामयाब रहते हैं।[3]

अट्ठारहवीं ब्रूमेर के एक वाक्यांश का नया अवतार सम्भव तब हुआ जब गुहा ने मार्क्स को मिशेल फ़ूको के आईने में पढ़ा। ज्ञानानुशासनों की फ़ौलादी दीवारों के परे जाने के लिए नियमों के

---

[1] कार्ल मार्क्स (1937), *द ऐटींथ ब्रूमेर ऑफ़ लुई बोनापार्ट (1851-1952)*, (अनु.), प्रोग्रेस पबिल्शर्स, मास्को; इतिहास लेखन तथा रूपक के मानकीय अध्ययन के लिए देखें, हैडेन वी. व्हाइट (1973), *मेटाहिस्ट्री : द हिस्टोरिकल इमैजिनेशन इन नाइनटींथ सेंचुरी युरोप*, द जॉन हॉपकिंस युनिवर्सिटी प्रेस, बाल्टीमोर.

[2] रणजीत गुहा (1983), *ऐलिमेंटरी आस्पेक्ट्स ऑफ़ पैज़ेंट इंसर्जेंसी इन कोलोनियल इण्डिया*, ड्यूक युनिवर्सिटी प्रेस, डरहम : 75-6. प्रस्तुत लेख के समस्त उद्धरण इसी संस्करण से लिए गये हैं. गुहा के उद्धरणों का हिंदी अनुवाद मैंने स्वयं किया है.

[3] हिंदी में विमर्शी लेखन की प्रेरणा मुझे अभय कुमार दुबे से मिली. इसके लिए मैं उनका तहेदिल से शुक्रिया अदा करती हूँ. लेख के बारीक़ ब्योरों को उन्होंने बहुत ध्यान से पढ़ा, इसलिए उनके सम्पादकीय धैर्य को भी सलाम करती हूँ. गुरु की असीम कृपा बयान करते हुए कबीर कहते हैं, 'गुरु समान दाता नहीं, याचक सीस समान'. लेख की रचना-प्रक्रिया में कई सहयोगियों से बातचीत बहुत मददग़ार रही. इसके लिए अमीर मुफ़्ती, शैल मायाराम, मिलिंद वाकणकर, राकेश पाण्डेय, रविकान्त शर्मा और आदित्य निगम का शुक्रिया.

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 593

दरवाज़े पार करने पड़ते हैं। फ़ूको के बिना शायद गुहा इन्हीं दरवाज़ों के तिलिस्म में फँस कर रह जाते। निम्नवर्गीय आंदोलन के इतिहास को साथ ले कर गुहा इन दरवाज़ों के पार नहीं जा पा रहे थे। दरअसल, किसान विद्रोहों को इतिहास की मामूली, टूटी, बिखरी और संयोजनहीन घटनाएँ मान कर दरकिनार कर दिया गया था। स्थापित ज्ञानानुशासनों की निगाह में निम्नवर्गीय (सबाल्टर्न) आंदोलन संगठित, सुनियोजित और रणनीतिसम्पन्न नहीं था। उन्मुक्त फ़िलॉलॅजी (लुई अलथूसे इसे 'सेवेज प्रैक्सिस' कहते हैं, और संस्कृत की परम्परा के आईने में इसे उन्मुक्त निरुक्तशास्त्र की संज्ञा दी जा सकती है) की किरण वहाँ फूटती है जहाँ एशिया, अफ्रीका और लातीनी अमेरिका के इतिहास व साहित्य को समझने के लिए गुहा जैसे चिंतक यह सवाल उठाते हैं कि इस संगठित फ़ितूर, उलगुलान या बवाल (यानी विद्रोह) में छुपे हुए संगठन, नियोजन, रणनीति और विवेक के बुनियादी पहलू क्या हैं?[4] महाभारत में विदुर (जो दासी पुत्र थे) का भेजा हुआ कारीगर लाक्षागृह से बच कर निकलने के लिए एक सुरंग बनाता है ताकि कुंती और पाँच पाण्डव जान बचा सकें। ज्ञानानुशासनों की दीवारों पर गुहा भी एक ऐसी सुरंग बनाते हैं जिससे औपनिवेशिक हिंदुस्तान का निम्नवर्गीय इतिहास जीवित हो कर हमारे अतीत का सृजनात्मक अंग बन जाता है। इस सुरंग का निर्माण करने के लिए फ़िलॉलॅजी गुहा के लिए एक औज़ार भी है और दार्शनिक प्रवृत्ति भी। वह तुलना का माध्यम भी है और क्रांति का एक मापदण्ड भी। परंतु गुहा के इस औज़ार को जैसे ही अनुशासनिक फ़िलॉलॅजीकल परम्पराओं के दायरे में रखा जाता है, इसका स्वरूप और इसकी महिमा कुण्ठित हो जाती है। इसलिए यह लाज़िमी है कि गुहा की उन्मुक्त फ़िलॉलॅजी का अर्थ-ग्रहण करने के लिए इसकी परिभाषा मार्क्सवाद की चंद बहसों के ज़रिये की जाए।

उन्मुक्त फ़िलॉलॅजी की परिभाषा : मार्क्सवाद में आंतरिक बहस के ज़रिये

उन्मुक्त फ़िलॉलॅजी जैसी अभिव्यक्ति मैंने गढ़ी है। इसलिए इस शब्द की परिभाषा देना आवश्यक है। यहाँ हमें मार्क्सवादी बहसों के उस संसार में जाना होगा जहाँ थियरी ऑफ़ प्रैक्सिस की चर्चा आती

---

[4] अरबी और फ़ारसी के कतिपय विद्वानों को शेल्डन पोलॉक के विचारोत्तेजक व्याख्यान 'लिबरल फ़िलॉलॅजी' के आशयों को लेकर थोड़ी दिक्कत है. पोलॉक ने यह व्याख्यान बर्लिन स्थित शोध कार्यक्रम जुकुनफ़िलॉलॅजी के तत्वावधान में विंटर स्कूल के तहत आयोजित किये गये संवाद 'फ़िलॉलॅजी अक्रॉस द एशियाज़ : द ट्रांसलेशन, ट्रांसमिशन ऐंड ट्रांसफॉर्मेशन ऑफ़ नॉलेज इन द अर्ली मॉडर्न वर्ल्ड' के अवसर पर दिया था. पोलॉक ने यही व्याख्यान विकासशील समाज अध्ययन पीठ (सीएसडीएस) में 10-21 दिसम्बर, 2012 के दौरान आयोजित एक अन्य कार्यक्रम में भी दिया था. इस व्याख्यान में कई भड़काऊ बातें कही गयी थीं. पोलॉक को हमारे दौर में संस्कृत काव्य-रूढ़ियों तथा भाषा-शास्त्र की परम्पराओं का एक प्रखर और लब्धप्रतिष्ठ विद्वान माना जाता है. लेकिन इस चर्चित व्याख्यान में पोलॉक शिलर का अनुसरण करते हुए फ़िलॉलॅजी को खुले तौर पर उन्मुक्त प्रैक्सिस की ओर ले जाते दिखाई दिये और श्रोतागण पोलॉक के एक नये रूप से रूबरू हुए. प्रकारांतर से वे अपने व्याख्यान में आनुशासनिक ढाँचों को दुबारा गढ़ने की दलील पेश कर रहे थे. उनके सम्बोधन में यह तर्क अंतर्निहित था कि फ़िलॉलॅजी का एक काम यह भी होना चाहिए कि वह संस्कृत और अरबी पर कठमुल्लावाद के वैचारिक कब्ज़े का भी विरोध करे. उनका कहना था कि फ़िलॉलॅजी को इस दिशा में प्रवृत्त करने के लिए उसका रुख उन्मुक्तवादी चिंतन की ओर कर दिया जाना चाहिए. इस बहस के बौद्धिक गुणसूत्र इरिक ऑरबैश के निबंध 'फ़िलॉलॅजी ऐंड वेल्ट लिटरेचर' (1952)में देखे जा सकते हैं. एडवर्ड सईद तथा मेरी सईद ने इस लेख का अंग्रेज़ी अनुवाद *सेंटेनिएल रिव्यू* (1969) के लिए किया था. इस संदर्भ में यह भी देखें, एडवर्ड सईद (2004), 'इंट्रोडक्शन टू इरिक ऑरबैशिज़ माइमेसिज', *ह्यमैनिज़म ऐंड डेमॉक्रैटिक क्रिटिसिज़म*, कोलम्बिया युनिवर्सिटी प्रेस, न्युयॉर्क : 85-118 तथा अमीर आर. मुफ़्ती (1998-9), 'ऑरबैश इन इस्ताम्बुल : एडवर्ड सईद, सेकुलर क्रिटिसिज़म, ऐंड द क्वेश्चन ऑफ़ मायनॉरिटी कल्चर', *क्रिटिकल इन्क्वायरी,* 25 : 95-125. ऑरबैश-सईद-मुफ़्ती तथा पोलॉक ने साहित्यिक अध्ययनों में बड़े स्तर पर लेकिन जहाँ-तहाँ बिखरे असंतोष को बहुत सघन ढंग से अभिव्यक्त किया है. उनके हस्तक्षेप में यह भाव भी उभरता दिखता है कि भाषा, संस्कृति और राजनीति की अभिनव भौतिक परिस्थितियों के मद्देनज़र फ़िलॉलॅजी के क्षेत्र में सिद्धांत और व्यवहार के समन्वय की एक नयी घड़ी आ चुकी है. मेरा यह लेख अखिल-एशियाई स्तर पर चल रही फ़िलॉलॅजी विषयक चर्चाओं के क्रम में एक विनम्र सा योगदान है.

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 594

है। 1845 के दौरान सावन के महीनों में मार्क्स क्लासिकल जर्मन दर्शनशास्त्र के बारे में सोच रहे थे। उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान इस दर्शन की विश्व-भर में प्रतिष्ठा थी। मार्क्स का प्रश्न था : इस दर्शन परम्परा की समाप्ति कैसे और कब होगी और उसकी जगह कौन-सा नया चिंतन लेगा। लुडविग फ़्यूरबाख़ की ग्यारहवीं थीसिस में निहित दार्शनिक दावेदारियों पर मार्क्स की आपत्ति यह थी कि उन्होंने थियरी और प्रैक्टिस का विभाजन करके थियरी (सिद्धांत) को मानवीय और प्रैक्सिस (आचरण) को सामाजिक न्याय की अस्पष्ट उलझनों में गिरफ़्त दिखाया था।[5] मार्क्स ने थियरी और प्रैक्टिस को मिलाकर 'प्रैक्सिस' की चर्चा करते हुए पूछा कि क्रांतिकारी आचरण में निहित व्यावहारिक-आलोचनात्मक पहलुओं को कार्यान्वित करने के लिए एक नया ज्ञानशास्त्र कैसे ईज़ाद किया जाए? आख़िर सिद्धांत सामाजिक जीवन से ऊपर बादलों में क्यों उड़ता है? मार्क्स ऐसे ज्ञानशास्त्र का निर्माण चाहते थे जो भौतिकवादी होने के साथ-साथ समाज द्वारा उद्भूत ज्ञान से भी जुड़ा हुआ हो। ग्यारहवीं थीसिस में मार्क्स ने एक संक्षिप्त और सरल वाक्य लिखा मानो वे अपने मित्र एंगेल्स से कह रहे हों : 'दार्शनिकों ने भिन्न-भिन्न तरीक़ों से सिर्फ़ दुनिया का विश्लेषण किया है, लक्ष्य तो यह है कि दुनिया को बदला कैसे जाए।'[6] उन्मुक्त फ़िलॉलॅजी की परिभाषा इसी बहस से जुड़ी हुई है। इसे स्पष्ट करने के लिए मैं निम्नलिखित दलीलें पेश करना चाहती हूँ :

1. थियरी और प्रैक्टिस के विभाजन से छुटकारा पाने की प्रबल इच्छा और क्षमता कौन से ज्ञान-क्षेत्र में है? ज़रूरी नहीं कि पुराने दर्शनशास्त्र की जगह नया दर्शनशास्त्र ही ले। ग्यारहवीं थीसिस में दर्शनशास्त्र स्थापित ज्ञानानुशासनों के उत्कृष्ट प्रतिनिधि की तरह है। ग्यारहवीं थीसिस का बुनियादी तर्क अपनी जगह क़ायम रह सकता है अगर नवीन ज्ञान को फ़िलॉलॅजी की तरह ढाला जाए, यानी जिसमें थियरी-प्रैक्टिस का नये सिरे से समायोजन हो या फ़िलॉलॅजी को कुछ अन्य समाज-विज्ञानों के साथ मिला कर एक अलग तरह के ज्ञान का सृजन किया जाए।

2. ग्यारहवीं थीसिस में दो विचारधाराएँ टकराती हैं। एक लहर है मार्क्स पर जर्मन दार्शनिक हिगेल के प्रभाव की। मार्क्स ने हिगेल को आदर्शवादी दार्शनिक कहा था क्योंकि उनकी निगाह में हिगेल सामाजिक यथार्थ को आदर्शों की चादर उढ़ा देते हैं। इस आपत्ति के बावजूद हिगेल के इतिहास-दर्शन का ग्यारहवीं थीसिस पर प्रभाव प्रमाणित है। मार्क्स इतिहास को हिगेलियन शैली में ही चरणों में बाँटते हैं यह सोच कर कि क्लासिकल जर्मन दर्शनशास्त्र के समाप्त होने पर इतिहास का एक नया चरण आएगा। परंतु ग्यारहवीं थीसिस पर हिगेल का यह प्रभाव उभर कर सामने नहीं आ पाता। पृष्ठभूमि में ग्यारहवीं थीसिस एक ऐसी विचारधारा लाती है जिसका मक़सद महज़ बुद्धिजीवियों को दिमाग़ी तसल्ली देना नहीं है। सिर्फ़ एक समस्या है, एक प्रश्न है और एक खोज है कि क्रांति के आचरण और उसके व्यवहार का सिद्धांतशास्त्र किस तरह बनेगा? दरअसल, इसी लहर का नाम है मार्क्स की फ़्यूरबाख़-समीक्षा। *ऐलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* के मार्क्सवादी आयाम में इन दोनों लहरों का टकराव जगह-जगह पर होता है। एक तरफ़ गुहा को किसान चेतना में क्रांति का प्रतिबिम्ब दिखाई

---

[5] कार्ल मार्क्स (1845), *इलेविंथ थीसिस ऑन फ़्यूरबाख़*, अनु. : डब्ल्यू लॉ, लुडविग फ़्यूरबाख़ का परिशिष्ट तथा *द ऐंड ऑफ़ क्लासिक्ल जर्मन फ़िलॉसफ़ी (1888), मार्क्स-एंगेल्स सेलेक्टेड वर्क्स* (1969), खण्ड 1, प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मास्को : 13-15 (पुनर्मुद्रित). इलेवंथ थीसिस की समकालीन प्रासंगिकता के लिए देखें, निवेदिता मेनन, 'थीसिस ऑन फ़्यूरबाख़, वूडी ऐलन और नंदीग्राम', *काफ़िला*, 25 नवम्बर, 2007.

[6] गुहा के हिगेलियन-मार्क्सवादी रुझान समझने के लिए देखें, गायत्री चक्रवर्ती स्पिवाक (1988), 'डिकंस्ट्रक्टिंग हिस्टोरिओग्राफ़ी', रणजीत गुहा तथा गायत्री चक्रवर्ती स्पिवाक (सम्पा.), *सेलेक्टिड सबाल्टर्न स्टडीज़*, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली. गुहा के इतिहास-लेखन पर संरचनावाद के प्रभाव से संबंधित एक बेहतरीन चर्चा के लिए देखें, दीपेश चक्रवर्ती (2013),'सबाल्टर्न स्टडीज़ इन रिट्रोस्पेक्ट ऐंड रेमिनिसेंसिज़', *इकॅनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली*, खण्ड XiVII, अंक 21, मई 25.

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 595

देता है जिसे वे हिगेलियन शब्दावली में चेतना या कांशसनेस के नाम से व्यक्त करते हैं। दूसरी ओर गुहा ग्यारहवीं थीसिस के प्रश्न को लेकर किसान के क्रांतिकारी व्यवहार को एक नवीन ज्ञान में ढाल कर बग़ावत के बुनियादी पहलुओं का नाम देते हैं। गुहा की रचना में ये दो विचारधाराएँ टकराती हैं। हिगेलियन विचारधारा एक तरफ़ रचना को खींचती है तो ग्यारहवीं थीसिस में फ़्यूरबाख़ की आलोचना दूसरी तरफ़ रचना को मोड़ देती है। इस टकराव से *ऐलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* की आंतरिक कशमकश, अधूरापन, अस्थिरता और अनिश्चितता पाठक के सामने उभर कर रचना को प्रचुर और सम्पन्न बनाती है।

रेखाचित्र : पंखुड़ी दुबे

अलथूसे ने इस नवीन ज्ञान की परिभाषा बताते हुए कहा कि यह वाइल्ड प्रैक्सिस अपने कार्यक्रमों के लिए अपना सैद्धांतिक परिचय पत्र पेश नहीं करता। परंतु इसकी पहचान यह है कि उसकी चुनौती के कारण वे ज्ञानानुशासन मजबूरी में चीख पड़ते हैं जिनका दावा है कि दुनिया की सच्ची व्याख्या वही कर सकते हैं।

3. यह इस नवीन ज्ञान-क्षेत्र, जो क्रांतिकारी प्रैक्सिस से बनेगा, की परिभाषा मार्क्सवाद में क्या है? 1968 में फ्रांस के चिंतक लुई अलथूसे ने इसे फ्रांसीसी भाषा में *उन प्रातीक सावाज* या 'वाइल्ड प्रैक्सिस' कहा था।[7] इस नये ज्ञान की परिभाषा करते हुए उनका कहना है कि यह वाइल्ड प्रैक्सिस रूसी क्रांति के नेता लेनिन ने की थी और लेनिन पहले मनुष्य थे जिन्होंने ग्यारहवीं थीसिस की भविष्यवाणी सुन कर इस नये क्रांतिकारी आचरण को गढ़ा। अलथूसे का कथन है कि मार्क्स के दोस्त एंगेल्स भी ऐसा नहीं कर पाए थे। अलथूसे के अनुसार यह वाइल्ड प्रैक्सिस कुछ इस तरह की है जैसे फ्रॉयड 'वाइल्ड एनालैसिस' की बात करते थे। इस तुलना से जान पड़ता है कि यह शब्द वाइल्ड इस संदर्भ में जंगली या असभ्य का अर्थ नहीं रखता। मार्क्सवाद की इस बहस में वाइल्ड का अर्थ कुछ और है— एक ऐसा क्रांतिकारी आचरण जो संहिताबद्ध नहीं है और संस्थागत ज्ञान-क्षेत्रों से न तो उत्पन्न हुआ है और न ही उन ज्ञान-क्षेत्रों के सिद्धांतों में नियमबद्ध है। इससे आगे अलथूसे ने इस नवीन ज्ञान की परिभाषा बताते हुए कहा कि यह वाइल्ड प्रैक्सिस अपने कार्यक्रमों के लिए अपना सैद्धांतिक परिचय पत्र पेश नहीं करती। परंतु इसकी पहचान यह है कि उसकी चुनौती के कारण वे ज्ञानानुशासन मजबूरी में चीख पड़ते हैं जिनका दावा है कि दुनिया की सच्ची व्याख्या वही कर सकते हैं। इस परिभाषा के अंत में अलथूसे पूछते हैं, 'कौन-सा ऐसा ज्ञान है जो अपनी शुरुआत में 'वाइल्ड' नहीं था?'[8] इस परिभाषा को ध्यान में रखते हुए जहाँ मैंने अंग्रेज़ी में

---

[7] लुई अलथूसे (1968), *लेनिन ऐंड फ़िलॉसफ़ी,* नया संस्करण *लेनिन ऐंड फ़िलॉसफ़ी ऐंड अदर एसेज़* (2001), अनुवाद : बेन ब्रीवस्टर, भूमिका : फ्रेडरिक जेमेसन, मंथली रिव्यू प्रेस, न्यूयॉर्क : 11-41. इस लेख में अलथूसे का अनुवाद मैंने स्वयं किया है.

[8] फ़रवरी, 2013 में सीएसडीएस में आयोजित एक कार्यशाला 'पैज़ेंट दैन ऐंड नाऊ' में मैंने अपने पर्चे में उन्मुक्त फ़िलॉलॅजी पद का प्रयोग किया था. इस पर गायत्रीदी ने कहा था कि मेरे इस प्रयोग में अलथूसे की संकल्पना *उन प्रातीक सावाज* या 'सेवेज प्रैक्सिस' का असर दिखाई देता है. प्रश्नोत्तर सत्र में उनकी टिप्पणी से मुझे यह समझने में सहूलियत हुई कि मुझे विचार की स्पष्टता की ख़ातिर अपने लेख में अलथूसे के निबंध का संदर्भ और साफ़ करना चाहिए.

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 596

इस नये ज्ञान को 'वाइल्ड फ़िलॉलॅजी' कहा है, वहीं हिंदी में उसी नवीन ज्ञान को उन्मुक्त फ़िलॉलॅजी का नाम दिया है। सच पूछें तो अलथूसे की परिभाषा के मुताबिक़ संहिताओं और नियमावलियों से मुक्त होना ही नये ज्ञान की उन्मुक्तता का संकेत है। 'वाइल्ड प्रैक्सिस' उन्मुक्तता का ऐसा प्रतिरूप है जो बौद्धिक-राजनीतिक-सामाजिक आज़ादी तक पहुँचता है अनुशासनिक ज्ञान-क्षेत्रों से मुक्त होकर।

उल्लेखनीय है कि अलथूसे की परिभाषा में ये बातें पहले दर्जे की अहमियत नहीं रखतीं कि क्रांतिकारी आचरण पर आधारित ज्ञान का विषय और पाठ्यक्रम क्या होगा। दर्शन हो या फ़िलॉलॅजी या इतिहास-लेखन ही, अलथूसे एक ऐसी बौद्धिक प्रवृत्ति की कल्पना कर रहे हैं जो बेनाम है, जिसके कार्यक्रम बिना औपचारिक परिचय पत्र के ही जारी हैं, और जिसके कारण पारम्परिक और व्यवस्थित ज्ञान-क्षेत्र घबराए हुए हैं। यह प्रवृत्ति अनुशासनिक ज्ञान के नियमों में बँधी ही नहीं है और न ही उन नियमों द्वारा किसी भी तरह पकड़ी जा सकती है।

4. परिभाषा करना मार्क्सवाद के शास्त्र के मर्म में है। हर नये युग के यथार्थ का विश्लेषण परिभाषाओं द्वारा ही किया जाता है। परिभाषा महज़ रटने के लिए निर्जीव तथ्य नहीं है। मार्क्सवाद में बहस का क्रम क़ायम रहता है परिभाषा को नये सिरे से परखते रहने के लिए। मार्क्सवाद की हर नयी पीढ़ी इस बेनाम उन्मुक्त ज्ञान की परिभाषा नये सिरे से गढ़ती है। मिसाल के तौर पर अमेरिका के कला इतिहासकार डब्ल्यू.जे.टी. मिचिल ने 2006 में प्रकाशित अपने एक साक्षात्कार में क्रांतिकारी आचरण पर आधारित कला की एक परिभाषा दी है।[9] प्रोफ़ेसर मिचिल ग्यारहवीं थीसिस को फ्रांसीसी चिंतक मिशेल फ़ूको की मानीख़ेज़ रचनाओं के दर्पण में देखते हैं। वे लक्षणशास्त्र की आलोचना करके कहते हैं कि इसने साइन-सिस्टम का वर्गीकरण करके दृश्य को पालतू बना दिया है जिससे उसकी क्रांतिकारी सम्भावनाएँ मंद हो गयी हैं। मिचिल जिसे पालतू दृश्य कहते हैं वह उन्मुक्त ज्ञान-क्षेत्र के बिल्कुल विपरीत है। उनके अनुसार दृश्य एक 'वाइल्ड साइन' है जिसमें अर्थ का विस्फोट करने की सामर्थ्य है। मिचिल इसकी परिभाषा यूँ देते हैं : दृश्य की क्रांतिकारी क्षमता इस बात में निहित है कि वह वहाँ पहुँच जाता है जहाँ सिर्फ़ या तो निरर्थक वचन है, या फिर विक्षिप्तता या अराजकता के दायरे हैं। दृश्य वहाँ पहुँच जाता है जो प्रकृति का क्षेत्र है, और जहाँ प्रकृति के द्वितीयक संस्करण की सांस्कृतिक भूलभुलैयों में मनुष्य खोया हुआ है।

मिचिल का इस्तेमाल करते हुए पढ़ें तो पता लगता है कि 'वाइल्ड साइन' पर उनका विचार मार्क्सवाद की बहसों से जुड़ा हुआ है। अलथूसे की तरह मिचिल भी क्रांतिकारी आचरण और व्यवहार की खोज में हैं। फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि अलथूसे इसे फ्रांसीसी दर्शन के बाद आने वाले ज्ञान-क्षेत्र में ढूँढ़ रहे हैं। उसी बहस को आगे बढ़ाते हुए मिचिल क्रांतिकारी आचरण को इमेज यानी विज़ुअलिटी के वाइल्ड साइन में ढूँढ़ते हैं। *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* की उन्मुक्त फ़िलॉलॅजी में शब्द, शरीर, छवि और ख़ामोशी की संकेत-योजना लक्षणशास्त्र की संहिताओं में पालतू कुत्ते की तरह दुम हिलाने के लिए नहीं है, बल्कि वन में घूमने वाले आज़ाद जानवरों की तरह है। *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* के पृष्ठों में किसान के साथ शब्द, चुप्पी, छवि, देह के सभी अर्थ-संबंधित चिह्न जुड़ जाते हैं ताकि वह ज़मींदार, सरकार और साहूकार से लड़ सके।

मार्क्सवाद की इन बहसों के संक्षिप्त बयान से यह तो साबित होता ही है कि *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* ने बड़े पैमाने पर इतिहास-लेखन को दिशा दी है। यही वह मुक़ाम है जहाँ से गुहा इतिहास-लेखन में दर्ज भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की अधूरी कहानी ख़ारिज कर देते हैं और उत्कृष्ट इतिहास-लेखन के

---

[9] डब्ल्यू.जे.टी मिचिल से एसब्योनग्रोन्सटैड तथा वाईविंड वैगनेसफ्रॉम का साक्षात्कार, *इमेज(&)नैरेटिव*, 'बैटल्स अराउंड इमेजिज़ : आइकोनोक्लाज़म ऐंड बियॉन्ड', नवम्बर 2006.

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 597

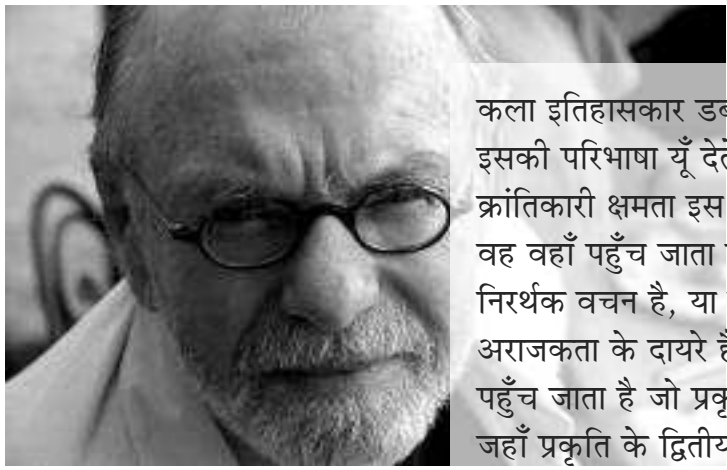

कला इतिहासकार डब्ल्यू.जे.टी. मिचिल इसकी परिभाषा यूँ देते हैं : दृश्य की क्रांतिकारी क्षमता इस बात में निहित है कि वह वहाँ पहुँच जाता है जहाँ सिर्फ़ या तो निरर्थक वचन है, या फिर विक्षिप्तता या अराजकता के दायरे हैं। दृश्य वहाँ पहुँच जाता है जो प्रकृति का क्षेत्र है, और जहाँ प्रकृति के द्वितीयक संस्करण की सांस्कृतिक भूलभुलैयों में मनुष्य खोया हुआ है।

थोपे गये भ्रम का खण्डन करते हैं। उनकी आँखें उस क्षितिज पर गड़ी हुई हैं जो ज्ञानानुशासनों की सीमा से परे जाता है। गुहा उस पूर्ववर्ती समय की कल्पना करते हैं जहाँ इतिहास-लेखन आरम्भ नहीं हुआ था या जो इतिहास की घटनाओं के बाहर है। एक तरह से यह पूर्व एक ज़रूरी लेकिन मनगढ़ंत कहानी है जिसे 'नेसेसरी फ़िक्शन' भी कहा जा सकता है। मार्क्स की ग्यारहवीं थीसिस व अलथूसे की 'वाइल्ड प्रैक्सिस' और मिचिल की 'वाइल्ड इमेज़' इस पूर्व के अनुकूल बैठती है। इसी विस्तारित ढाँचे में *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* अपने भाषा-संबंधित तर्क प्रस्तुत करता है।

गुहा को कैसे समझा गया!

भाषा व इतिहास-लेखन के संबंध के विषय पर गुहा का मौलिक चिंतन किस प्रकार का है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें कुछ विद्वानों द्वारा किये गये गुहा के भाष्य पर विचार करना होगा। शाहिद अमीन व गौतम भद्र ने यह विचार प्रस्तुत किया है कि भाषा गुहा का स्थायी जुनून है।[10] अमीन और भद्र के अनुसार इस स्थायी जुनून की जड़ें बांग्ला साहित्य ने सींची हैं जिसमें गुहा की गहरी दिलचस्पी है। गुहा के भाषा से संबंधित जुनून के दो पहलुओं पर अमीन और भद्र ने रोशनी डाली है। एक पहलू लेखक केंद्रित है यानी इतिहासकार का वह रूप जो लेखक की उन गहन उत्सुकताओं से संतृप्त है जो गुहा ने भाषा व अलंकारशास्त्र से संबंधित अपनी जिज्ञासाओं से प्राप्त किया है। अमीन व भद्र की टिप्पणी का विश्लेषण आवश्यक है। उन्हें पढ़ते हुए हम मन ही मन जिज्ञासा शब्द का अनुवाद विशेषज्ञता शब्द में कर देते हैं, जबकि दोनों में बहुत अंतर है। भाषा-विशेषज्ञ चार-पाँच भाषाओं में निपुण हो सकता है पर महज़ भाषाओं को सीखने और प्रयोग करने से वह भाषा संबंधित जिज्ञासा नहीं समझ सकता। यही नहीं, भाषा-विशेषज्ञ अनुशासनिक भाषाशास्त्र के नियमबद्ध दायरे में भाषा का अध्ययन करता है परंतु उसकी कल्पना के पंख इन नियमों में अक्सर फँस कर रह जाते हैं और उसकी चिंतन-शक्ति अनुशासनिक ज्ञान-क्षेत्र की पालतू बन जाती है। *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* में गुहा

---

[10] शाहिद अमीन तथा गौतम भद्र (1994), 'रणजीत गुहा : अ बायोग्राफ़िकल स्केच', डेविड आर्नल्ड और डेविड हार्डीमैन (सम्पा.), *सबाल्टर्न स्टडीज़,* आठवाँ खण्ड, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली : 222-225.

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 598

की भाषा संबंधित जिज्ञासा लक्षणशास्त्र, सॉस्युरियन भाषाशास्त्र, संरचनावाद अथवा पाणिनि के व्याकरण का सृजनात्मक प्रयोग करते हुए भी किसी एक विचारधारा की अनुगामिनी नहीं है।

गुहा की भाषा संबंधित जिज्ञासा किस आधार पर अनुशासनिक भाषाशास्त्र का प्रयोग करते हुए भी उसके अनुशासन से मुक्त है ? इस प्रश्न पर सावधानी से सोचना पड़ेगा क्योंकि अनुशासनिक ज्ञान-व्यवस्था से पूर्ण मुक्ति एक भ्रम है। औपनिवेशिकता के तहत पनपे प्राच्यवादी भाषाशास्त्र ने हिंदुस्तान की भाषा, बोली, भाखा व ज़ुबान की इस प्रकार नियमबद्ध अध्ययन प्रणाली बनाई है कि भाषा के विषय में उन्मुक्त सोच ही सम्भवत: ज्ञान के क्षेत्र में परिवर्तन यानी प्रतिमानमूलक बदलाव ला सकता है। केवल इसी तरीक़े से भाषा के मूल सिद्धांत, परिभाषा, विश्लेषण की प्रणाली आदि पर नये सिरे से चिंतन किया जा सकता है। और, इस ज्ञान-परिवर्तन को जन्म देने वाली दाई ही इतिहासकार व साहित्य-समीक्षक की भाषा संबंधी जिज्ञासा है।

इस संदर्भ में गुहा की जिज्ञासा एक दार्शनिक अभिवृत्ति है जिसमें आज्ञाकारिकता और अनुपालन को अहमियत नहीं दी जाती है। जिज्ञासा से अनुप्राणित इतिहासकार विस्मय, अनुराग, एकाग्रता अथवा ग्रहणशीलता से कल्पना के द्वार खोलते हुए निम्नवर्गीय इतिहास के जटिल प्रश्नों से जूझता है। जिज्ञासु व्यक्ति में सम्भावना होती है कि वह पूर्व-धाराओं के प्रभाव से बचते हुए जिज्ञासा की वस्तु पर ध्यान देता है। गुहा की भाषा संबंधित जिज्ञासा के केंद्र में हमें मार्टिन हाईडैगर के दर्शनशास्त्र का प्रभाव दिखता है। दूसरे, गुहा की जिज्ञासा व्यक्तिगत न होकर शिक्षात्मक है।

अमीन व भद्र के अनुसार दूसरा पहलू यह है कि गुहा एक मँजे हुए और साहसी शैलीकार हैं। अमीन व भद्र का यह कथन महज़ प्रशांसात्मक नहीं है। वे केवल गुहा का स्तुति-गीत नहीं गा रहे हैं। इतिहासकार का शैलीकार होना उसे ग़ालिब के अंदाज़ेबयाँ और कबीर की अटपटी बानी के क़रीब लाता है। वैसे भी फ़िलॉलॅजी उन्मुक्त तभी हो सकती है जब उसकी शैली मँजी हुई और साहसी हो। दोनों पहलू— एक ओर इतिहासकार की जिज्ञासा और विस्मय और दूसरी ओर लेखक का अंदाज़ेबयाँ— एक दूसरे में विलीन नहीं होनी चाहिए। क्योंकि जिज्ञासा और अंदाज़ेबयाँ के बीच में गुहा एक ऐसे ज्ञान-क्षेत्र की कल्पना करते हैं जो अनुशासनिक भाषा-ज्ञान से कुछ हद तक विशिष्ट होने की सम्भावना रखता है।

शाहिद अमीन व गौतम भद्र ने यह विचार प्रस्तुत किया है कि भाषा गुहा का स्थायी जुनून है।... गुहा एक मँजे हुए और साहसी शैलीकार हैं। अमीन व भद्र का यह कथन महज़ प्रशांसात्मक नहीं है। वे केवल गुहा का स्तुति-गीत नहीं गा रहे हैं। इतिहासकार का शैलीकार होना उसे ग़ालिब के अंदाज़ेबयाँ और कबीर की अटपटी बानी के क़रीब लाता है। वैसे भी फ़िलॉलॅजी उन्मुक्त तभी हो सकती है जब उसकी शैली मँजी हुई और साहसी हो। दोनों पहलू— एक ओर इतिहासकार की जिज्ञासा और विस्मय और दूसरी ओर लेखक का अंदाज़ेबयाँ— एक दूसरे में विलीन नहीं होने चाहिए। क्योंकि जिज्ञासा और अंदाज़ेबयाँ के बीच में गुहा एक ऐसे ज्ञान-क्षेत्र की कल्पना करते हैं जो अनुशासनिक भाषा-ज्ञान से कुछ हद तक विशिष्ट होने की सम्भावना रखता है।

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 599

पार्थ चटर्जी का कहना है कि गुहा एक ओर तो पूर्वी यूरोप में कम्युनिस्ट सत्ता द्वारा किये जाने वाले सामाजिक दमन से मायूस हो कर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि आधुनिक ज्ञान का सबसे ऊँचा मूल्य है प्रकृति पर प्रौद्योगिकी के माध्यम से अपनी सत्ता स्थापित करना। साथ ही गुहा ने नतीजा भी निकाला कि अधिकतर सामाजिक कार्यों को आर्थिक विवेक यानी इकॉनॉमिक रैशनैलिटी के मापदण्ड से संगठित किया जाता है। कम्युनिस्ट नीति जिन रोगाणुओं से पीड़ित थी, गुहा ने उनका कारण आधुनिक ज्ञान-व्यवस्था में चिह्नित किया। वे आधुनिक इतिहास-लेखन के फ़ॉर्म यानी शिल्प को भी इस रोग (पैथॉलॅजी) का शिकार मानने लगे।

अगर गुहा की जिज्ञासा उन्मुक्त सोच का बीज बोती है, तो इस काल्पनिक फ़िलॉलॅजी को साकार करने का माध्यम एक ऐसी शृंखला है जिसका सूक्ष्म विवरण पार्थ चटर्जी ने अपने सम्पादकीय परिचय में दिया है।[11] यद्यपि चटर्जी जिन गुहा की चर्चा कर रहे हैं वे 1999-2007 के हैं, फिर भी यह कहना उचित होगा कि गुहा के जुनून स्थायी हैं। अर्थात् गुहा ने भाषा के विषय में इस दौर में जो सोचा, वही उनके सोच का आरम्भिक व प्रत्याशित रूप था जो हमें 1974-1983 के दौरान उनके लेखन में दिखाई पड़ता है। आरम्भ में इस सोच की कड़ियाँ धुँधली सी दिखाई पड़ती हैं। लेखकीय प्रौढ़ता प्राप्त करने के बाद गुहा इसी सोच को कड़ियों की शृंखला के रूप में स्पष्ट करते हैं। चटर्जी ने गुहा के चिंतन की दो कड़ियों के पारस्परिक संबंध में भाषा को तीसरी कड़ी का दर्जा दिया है। इस तीसरी कड़ी में भाषा का उन्मुक्त सोच दर्शनशास्त्र और काव्य से जुड़ा है, अनुशासनिक भाषाशास्त्र से नहीं। दर्शनशास्त्र भारत के कई औपनिवेशिक अथवा पूर्व-औपनिवेशिक बुद्धिजीवियों के लिए एक ख़ास महत्त्व रखता है। नीति अथवा ज्ञानमीमांसा को नये सिरे से सोचने के लिए दर्शनशास्त्र का अध्ययन इन बुद्धिजीवियों की नज़र में आवश्यक है। इनके लिए साहित्य दर्शनशास्त्र का प्रतिद्वंद्वी या अधीनस्थ नहीं है। साहित्य की शैली अलग ज़रूर है, परंतु इतिहासकार को साहित्य की अंतर्दृष्टि की ज़रूरत होने के साथ ही दर्शनशास्त्र के विशाल पैमाने की आवश्यकता भी है। साहित्य और दर्शनशास्त्र की दुहरी मदद से गुहा का भाषा संबंधित सोच सामाजिक व नीति संबंधित प्रश्नों की रोशनी में निम्नवर्गीय संदर्भ में जूझता है। ज्ञानमीमांसा के क्षेत्र में पनप कर गुहा का सोच अनुशासनिक भाषाशास्त्र का विरोध करता है।

गुहा की चिंतन-शृंखला के बारे में पार्थ चटर्जी का कहना है कि गुहा एक ओर तो पूर्वी यूरोप में कम्युनिस्ट सत्ता द्वारा किये जाने वाले सामाजिक दमन से मायूस हो कर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि आधुनिक ज्ञान का सबसे ऊँचा मूल्य है प्रकृति पर प्रौद्योगिकी के माध्यम से अपनी सत्ता स्थापित करना। साथ ही गुहा ने नतीजा भी निकाला कि अधिकतर सामाजिक कार्यों को आर्थिक विवेक यानी

---

[11] पार्थ चटर्जी (सम्पा.) (2009), *रणजीत गुहा : द स्माल वॉयस ऑफ़ हिस्ट्री: कलेक्टिड एसेज़*, पर्मानेंट ब्लैक, नयी दिल्ली : 1-17.

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 600

इकॅनॉमिक रैशनैलिटी के मापदण्ड से संगठित किया जाता है। कम्युनिस्ट नीति जिन रोगाणुओं से पीड़ित थी, गुहा ने उनका कारण आधुनिक ज्ञान-व्यवस्था में चिह्नित किया। दूसरी ओर गुहा के चिंतन में नयी समालोचना का उद्घाटन हुआ। वे आधुनिक इतिहास-लेखन के फ़ॉर्म यानी शिल्प को भी इस रोग (पैथॉलॅजी) का शिकार मानने लगे।

सवाल यह है कि चिंतन के इन दोनों विषयों के संदर्भ में चटर्जी गुहा के भाषा संबंधित अध्ययन का वर्णन क्यों करते हैं? चटर्जी के शब्दों में, 'उन्हीं दिनों और उसी अरसे में वे फिर से भाषा के प्रयोग के विषय में नये ढंग से सोचने लगे। यही कारण था कि उन्होंने संस्कृत काव्य के समृद्ध ख़ज़ाने को गहराई से पढ़ना अथवा भर्तृहरि के भाषा संबंधित दर्शनशास्त्र का अध्ययन करना शुरू किया।' चटर्जी के इस कथन से यह मतलब निकालना हमारी भूल होगी कि गुहा की फ़िलॉलॅजी केवल संस्कृत काव्य, पाणिनि के व्याकरण अथवा भर्तृहरि के दर्शनशास्त्र से ही जुड़ी है। दरअसल, चटर्जी के वर्णन के अनुसार भाषा संबंधित कड़ी का पूरा अर्थ उस शृंखला में है जिसके तहत गुहा एक तरफ़ तो आधुनिक ज्ञानानुशासनों के मूल सिद्धांतों का विरोध करते हुए उसकी जड़ों का अनावरण करते हैं, और दूसरी ओर आधुनिक इतिहास-लेखन के सामान्य शिल्प की त्रुटियों की समीक्षा करते हैं। इसी संदर्भ में गुहा प्राचीन भारत के दर्शनशास्त्र व काव्य में भाषा की वास्तविकता ढूँढ़ते हैं। चटर्जी की प्रभावशाली टिप्पणी हमारा परिचय कुछ लेखकीय पहलुओं से कराती है, परंतु यहाँ रचनात्मक पहलुओं को समझना भी आवश्यक है। यह देखना भी ज़रूरी है कि गुहा की रचना में भाषा की उपस्थिति की विद्या किस प्रकार की है?

गुहा की रचना में भाषा की उपस्थिति का आधारभूत तर्क

प्रथम संकेत : निम्नवर्गीय संदर्भ में भाषा और समाज का संबंध प्रतिबिम्ब का न होकर मध्यस्थता का है!

भाषा को उच्चवर्गीय समाज अथवा निम्नवर्गीय विद्रोह के संदर्भ में विश्लेषित करना *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इसका उल्लेख हमें अमीन, भद्र अथवा चटर्जी में नहीं मिलता। इसके विभिन्न कारण हो सकते हैं। जिसमें एक यह भी है कि इतिहासकारों का सम्पूर्ण ध्यान औपनिवेशिक हिंदुस्तान में हुई हथियारबंद बग़ावतों (जिन्हें गुहा ख़ास तौर पर क्रांतियों की संज्ञा देते हैं) के इतिहास के जटिल प्रश्नों और गुहा के तर्क पर था। परिणामस्वरूप *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* को इतिहासकारों ने बड़े ध्यान से पढ़ा और सराहा। परंतु उन्होंने गुहा की रचना में भाषा की चर्चा को केवल क्रांति के विश्लेषण का एक अंग की तरह ग्रहण किया।

परंतु हम भाषा के बिंदु को प्रमुख मान कर *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* का अध्ययन करें तो गुहा के अनुसंधान का एक अन्य पहलू सामने आता है। नीचे दिया गया रेखाचित्र-1 बताता है कि युरोप की ज्ञानोदय-पूर्व तुलनात्मक फ़िलॉलॅजी के अनुसार भाषा समाज का प्रतिबिम्ब है।

भाषाशास्त्र के अनुशासन में भाषा और बोली का विकास हिंदुस्तान के सामाजिक संगठन व समृद्ध संस्कृति के विकास का प्रतिबिम्ब माना गया है। लेकिन, *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* में भाषा और समाज का संबंध प्रतिबिम्ब का न हो कर मध्यस्थता यानी मीडियेशन का है। इस रचना में गुहा ने चंद सवाल उठाए हैं : भाषा में कौन से ऐतिहासिक चिह्न हैं? भाषा के ऐतिहासिक रूप द्वारा हम औपनिवेशिक हिंदुस्तान की समाज-व्यवस्था के विषय में जानकारी कैसे पा सकते हैं? क्या यह सम्भव है कि भाषा के माध्यम से हम औपनिवेशिक भारत की समाज-व्यवस्था में निहित विच्छिन्नताओं और अव्यवस्थाओं को पहचान सकें? क्या भाषा भारतीय संस्कृति के गौरव का चिह्न है? सम्भवत: भाषा न सिर्फ़ गौरव-चिह्न है, बल्कि संस्कृति में लिपटे हुए निम्नवर्गीय दमन की बर्बरता का भी चिह्न

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 601

है। निम्नवर्गीय किसान का दमन भाषा के माध्यम से कैसे होता था?

एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स के अध्याय 'निगेशन' में गुहा कहते हैं कि भाषा जातिवाद व जातिगत सत्ता का रजिस्टर या सूचीपत्र था (पृ. 42)। भाषा के भीतर श्रेणीबद्ध विभाजन (पृ. 49) इस तरह नियमानुसार रचा गया था कि भाषा के विकास व निम्नवर्गीय दमन में अंतर नहीं रह जाता था। उदाहरणस्वरूप गुहा कहते हैं कि मौखिक सम्मान (पृ. 41) व मौखिक भेदभाव उच्चवर्गीय सुसंस्कृत भाषा से जुड़ा हुआ था। हर प्रकार की विभिन्नता, पुरुष-स्त्री, छोटे-बड़े, कुल और जाति, जताने वाले शब्द नियमबद्ध भाषा से जुड़े हुए थे। भाषा के नियमों का उल्लंघन करने के लिए दिये जाने वाले दण्डों से भाषा के इस रूप का प्रमाण मिलता है। निम्नवर्गीय किसान, सिपाही व आदिवासी का अभिजात वर्णों की भाषा से रिश्ता भय व तनाव का था। सुसंस्कृत भाषा के नियम भंग करने की कड़ी सज़ा मिलती थी। लाठियों की बौछार, घर-ज़मीन छिन जाना, निम्नवर्गीय स्त्रियों पर अत्याचार, झोपड़ी व खेतखलिहान में आग लगवा देना व पिघला हुआ लोहा दलित अपराधी के कान में उँड़ेल देना। रेखाचित्र-2 के ज़रिये इस अध्याय में भाषा और उच्चवर्गीय समाज के बीच मध्यस्थता वाला संबंध उभरता है।

इस रेखाचित्र में आधार और अधिरचना दोनों अलग नहीं है। मैं यह तर्क दे रही हूँ कि निम्नवर्गीय संदर्भ में भाषा का तीर किसी भी दिशा में जा सकता है। दोनों रेखाचित्रों में अनुशासनिक फ़िलॉलॅजी व गुहा की भाषा से संबंधित उन्मुक्त सोच में प्रमुख अंतर यह है : पहले में समाज को स्थिर व गतिहीन माना गया है। परंतु दूसरे में समाज मनुष्यों की दमनकारी शक्तियों व सृजनकारी शक्तियों से उर्वर व क्रियाशील दिखता है। क्योंकि रेखाचित्र-2 में समाज गतिशील है, तो वहाँ भाषा भी सक्रिय है। शोषण की व्यवस्था को भाषा निरंतर बनाती-सँवारती व परिष्कृत करती दिखती है। *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* का दूसरा संकेत समाज व भाषा की सक्रियता और परिवर्तनशीलता के बारे में है।

रेखाचित्र-1

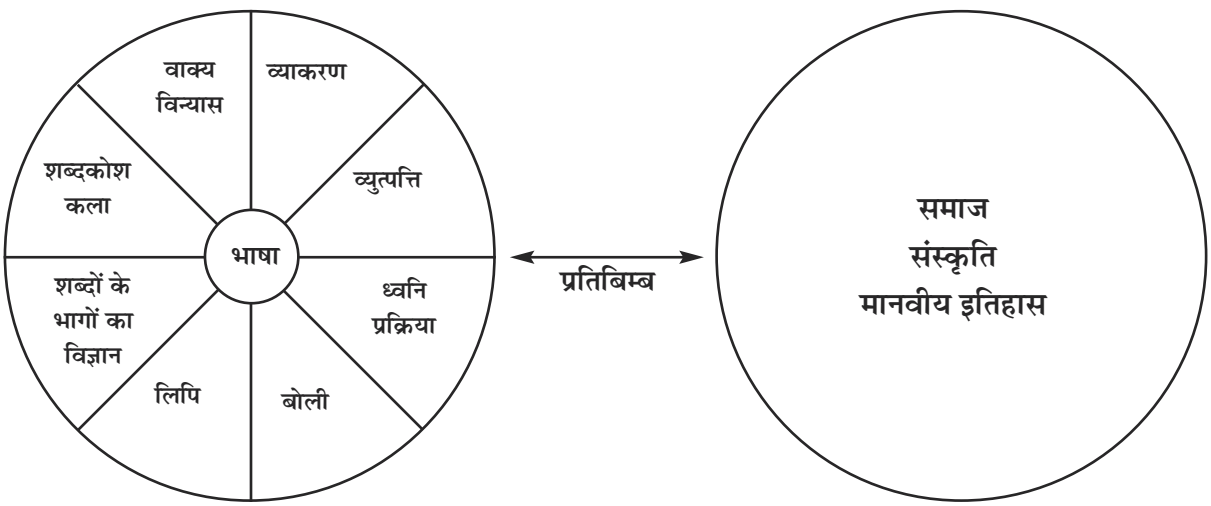

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 602

दूसरा संकेत : नकारात्मकता में किसान क्रांतिकारी की भाषा-संबंधित समझ अभिव्यक्त होती है!

अनुशासनिक फ़िलॉलॅजी के तहत भाषाई परिवर्तन का स्रोत समाज के किन वर्गों में निहित है ? पहली श्रेणी भाषाशास्त्री, दर्शनशास्त्री, लिपिक, अनुवादक व मुंशी की है। यहाँ गुहा ने भाषा-विकास व शिक्षित वर्गों के संबंधों की गाँठ खोल दी है या यह कहना उचित होगा कि गुहा ने उस गाँठ को ढीला करके एक दूसरी गाँठ कस दी है। इस दूसरी गाँठ में गुहा ने निम्नवर्गीय किसान के भाषा संबंधित सोच को प्रधानता दी है।

एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स के मुताबिक़ निम्नवर्गीय किसान दण्ड से बचने के लिए भाषा के नियमों को अपनाता है। कुछ इस तरह मानो वह नियम उसके लिए स्वाभाविक ही हो। परंतु यह किसान किस गहराई तक साहूकार, ज़मींदार व सरकार की भाषा-व्यवस्था समझता है, यह किसान आंदोलन में ही स्पष्ट होता है। गुहा का रैडिकल तर्क था कि भाषा का हम क्रांति के निगेशन यानी प्रतिलोम क्रम द्वारा भी विश्लेषण करना चाहिए। संथालों के हूल विद्रोह में गुहा के कथन के अनुसार किसान नियमबद्ध भाषा की दहलीज पार करते हुए सुसंस्कृत भाषा की पवित्रता व शुद्धता को भंग कर डालते हैं (पृ. 478)। गुहा कहते हैं कि इस महत्त्वपूर्ण अतिक्रमण (पृ. 39) का विवरण औपनिवेशिक दस्तावेज़ों में विस्तार से नहीं मिलता। यह तो गुहा ने केवल साहित्य के माध्यम से ही प्राप्त किया है। दीनबंधु मित्र के नाटक *नील दर्पण* से गुहा को क्रांति के दौर में सुसंस्कृत भाषा के उल्लंघन की जानकारी मिली थी।

मौखिक सम्मान नकारना और उसके नियमों को पलटना (पृ. 48) किसान क्रांति का प्रथम कार्य है। भाषा के लिखित रूप का विरोध करके क्रांति के दौरान किसान घृणा की भावना का साक्षात्कार करता है। कारण यह कि लिखित भाषा की ताक़त किसान को साहूकार के बही खाते में अथवा

रेखाचित्र-2

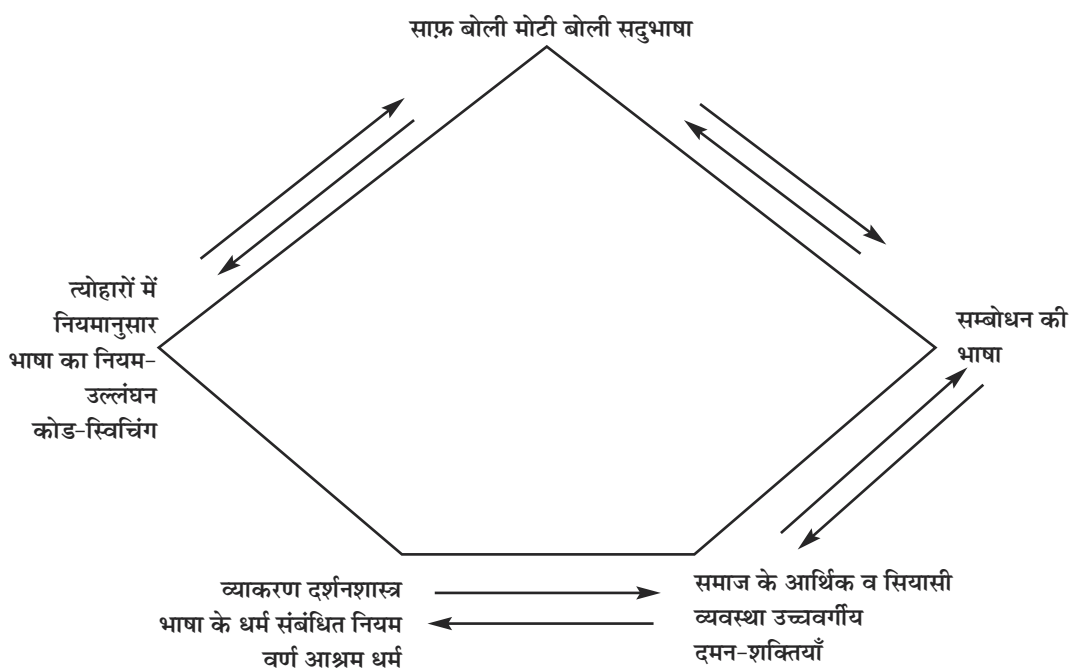

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 603

ज़मींदार व सरकार के लैण्ड रिकॉर्ड व लगान के रिकॉर्ड में दिखती है। लिखी हुई भाषा के काग़ज़ों को जला कर किसान उनमें छुपी उच्चवर्गीय दमन-शक्ति को नष्ट कर देना चाहता है। मेरे विचार में गुहा ने उच्चवर्गीय भाषा का विश्लेषण कार्य भाषाशास्त्री, दार्शनिक व मुंशी में ही नहीं पाया, परंतु निम्नवर्गीय क्रांतिकारी में ढूँढ़ निकाला। यही कारण है कि भाषा का सशक्त रूप हमें गुहा की रचना में वहाँ मिलता है जहाँ मार्क्सवाद की बहसों के मध्य में वे भाषा को तुलना के स्तर से बढ़ा कर प्रमाण के स्तर पर लाते हैं।

तीसरा संकेत : भाषा से संबंधित कार्यों में किसान क्रांति की योजनात्मक बुद्धि का प्रमाण

एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स लिखते समय गुहा इस समस्या से जूझ रहे थे कि औपनिवेशिक दस्तावेज़ व इतिहास-लेखन में किसान का विद्रोह एक बुद्धिहीन उतावलापन जैसा लगता है। इंग्लैण्ड के मार्क्सवादी इतिहासकार क्रिस्टोफ़र हिल की एक अभिव्यक्ति 'प्रिमिटिव रिबेल' से गुहा जूझते हैं। क्या औपनिवेशिक हिंदुस्तान का किसान विद्रोह भी योजना रहित और असंगठित भड़कावे का रूप है? अपने अध्ययन के दौरान गुहा को महत्त्वपूर्ण प्रमाण यह मिला कि किसान विद्रोह आकस्मिक व जंगली नहीं है। यह प्रमाण गुहा ने किसान के भाषा संबंधित कार्यों व लक्षणशास्त्र की नवीन योजना में पाया।

यह समझा जा सकता है कि आक्रोश की एक घड़ी में किसान के लिए उच्चवर्गीय मौखिक सम्मान के नियमों को समझना और लिखित भाषा की दमन-शक्ति से परिचित होना असम्भव था। किसान अगर अचानक भड़क उठता तो उच्चवर्गीय बोली को पलटना और उसका प्रतिलोमक्रम करना सम्भव नहीं होता। इसके लिए किसान को सूझ-बूझ, धैर्य, विचार-विमर्श और संगठन की ज़रूरत थी। मिसाल के तौर पर गुहा कहते हैं कि क्रांति के प्रयोग के लिए किसान लिखित भाषा को प्रतीकात्मक तौर से अपनाता है। संथाल हूल में भाषा के लिखित रूप को किसानों ने दैवी हस्तक्षेप का संकेत माना जिसके उपरांत ही उन्होंने हूल करने का निश्चय किया (पृ. 54)। संथाल नेता सिद्धो और कान्हा ने भाषा के लिखित रूप के ज़रिये क्रांति को पवित्र व जादुई ताक़त प्रदान की (पृ. 54)।

गुहा ने क्रांति के घटनात्मक रूप को हिंसक कार्यों व विजय-पराजय के आईने में ही नहीं देखा, बल्कि उलगुलान, फ़ितूर व हूल के घटनात्मक रूप को क्रांति के लक्षणशास्त्र के परिवर्तन में भी देखा। विद्रोह के हर भाग में उन्हें अर्थपूर्ण लक्षण नज़र आने लगे : देह-भाषा, नकल, व्यंग व नकारने की भाषा। *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* में ऐसा प्रतीत होता है कि विद्रोह एक ऐसी ज्वाला है जिसमें तप कर किसान की भाव भंगिमा, देह, पहनावा, तोड़-फोड़ एक स्पष्ट भाषा का रूप ले लेता है।

चौथा संकेत : निम्नवर्गीय संदर्भ के इतिहास-लेखन पर उन्मुक्त फ़िलॉलॅजी का साया

ऐसे महत्त्वपूर्ण तर्क व नवीन दृष्टिकोण के कारण ही *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* में निम्नवर्गीय संदर्भ के ज्ञान-क्षेत्र से फ़िलॉलॅजी का संबंध दुहरा हो जाता है। जहाँ-जहाँ गुहा किसान क्रांति के प्रश्न उठाते हैं, वहाँ-वहाँ फ़िलॉलॅजी एक छाया की तरह साथ-साथ चलती है। अगर इस कृति को हम निम्नवर्गीय संदर्भ के इतिहास-लेखन का प्रस्ताव-पत्र मानें तो ऐसा प्रतीत होगा कि इसमें गुहा की उन्मुक्त फ़िलॉलॅजी उनके इतिहास-लेखन से जुड़ी हुई है। इस जुड़ाव का एक विचित्र संबंध है, क्योंकि इस रचना में फ़िलॉलॅजी का अपना कोई अलग अस्तित्व नहीं है। यानी इस इतिहास-लेखन में फ़िलॉलॅजी एक बेनाम, अविकसित और टुकड़ों व निशानों में बँटे हुए जिन्न के समान है।

स्पष्ट है कि गुहा में फ़िलॉलॅजी की उपस्थिति एक साये के तौर पर अथवा लेश मात्र है। निस्संदेह बेनाम होते हुए भी अमीन और भद्र को यह फ़िलॉलॅजी गुहा की जिज्ञासा के रूप में दिखाई पड़ती है। चटर्जी के अनुसार गुहा की फ़िलॉलॅजी उनके सोच की शृंखला की एक कड़ी के रूप में दिखती है

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 604

और उसका पूरा आकार गुहा की उस विचारधारा में उभरता है जहाँ वे आधुनिक अनुशासनिक ज्ञान के संगठन व मूल सिद्धांत की ख़ामियों के बारे में सोचते हैं। दिलचस्प यह है कि इस बेनाम जिन्न का गहरा रिश्ता गुहा की एक अन्य कृति *हिस्ट्री एट द लिमिट ऑफ़ वर्ल्ड हिस्ट्री* (2002) से है। इसमें उन्मुक्त फ़िलॉलॅजी के कुछ पहलुओं का सुंदर नामकरण हुआ है। इसमें इसे 'साहित्य ऐतिहासिकता' या 'हिस्टोरिकैलिटी' कहा गया है।

चूँकि *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* में उन्मुक्त फ़िलॉलॅजी का परिपक्व रूप हमें नहीं मिलता, इसलिए हमारे विश्लेषण को भी इसी के मुताबिक़ होना पड़ेगा। हमें तीन तरह के औज़ारों का प्रयोग करना होगा। पहला औज़ार लेखक-केंद्रित है- गुहा की मित्रों से बातचीत, प्रत्यक्षवाद का विरोध व मार्क्सवाद की बहसों में भाग लेना। दूसरा औज़ार रचना-केंद्रित है— रूपक, उद्धरण, गुहा का हिगेलियन रुझान और मार्क्सवाद के उस पहलू के प्रति आकर्षण जिसे वे मार्क्स की ग्यारहवीं थीसिस बुलाते हैं। तीसरा और आख़िरी औज़ार पाठक-केंद्रित है— पाठकों की *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* पर दावेदारियाँ और रचना की आधी-अधूरी भाषा-संबंधित खोज जिसके सहारे पाठक रचना को अध्ययन के ज़रिये आत्मसात् करते हैं और जिसे अमेरिकन-जर्मन साहित्य-समीक्षक पॉल द मॉन ने 'एलिगरीज़ ऑफ़ रीडिंग' क़रार दिया है।

फ़िलॉलॅजी के माध्यम से प्रत्यक्षवाद का विरोध

प्रत्यक्षवाद के प्रभाव में विद्यार्थियों को अकसर ऐसा लगता है कि *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* के इतिहास-लेखन का सत्य उसके तर्क, ठोस तथ्यों, प्रमाणों और मौलिक अनुसंधान में होना चाहिए। विद्यार्थियों के हिसाब से इतिहास-लेखन कब, कहाँ, क्यों व किस तरह आदि के उत्तरों में है। वे इतिहास को घटनाओं व तारीख़ों के विवरण में देखते हैं। रचना के अन्य पहलू, जैसे उसका अर्थग्रहण, किसान के विद्रोह की कार्रवाइयों में स्पष्ट व अस्पष्ट भाषा का इस्तेमाल— ये सब उन्हें हल्की-फुल्की लगती हैं। उन्हें ऐसा प्रतीत होता है मानो इन बातों का क्रांति के गम्भीर विषय से गहरा ताल्लुक़ नहीं है। कारण यह है कि इन बातों का वैज्ञानिक प्रमाण भी नहीं मिलता। प्रत्यक्षवादी प्रणाली का प्रमुख दोष यह न मानना है कि गुहा की रचना का तर्क और समाज-चिंतन उसकी शैली यानी फ़ॉर्म के पहलुओं से भिन्न है। प्रत्यक्षवादी पाठक के लिए रचना की शैली उसका ऊपरी आवरण है जो फल के छिलके की तरह रचना के तर्क या आंतरिक सामग्री या गूदे से अलग किया जा सकता है। प्रत्यक्षवादी इस सम्भावना से अपरिचित हैं कि रचना के तर्क छिलके और फल की आंतरिक मिठास में भी है। वह नहीं जानता कि इस कृति की शैली, आवरण, छिलका या फ़ॉर्म भी उसके आंतरिक भाग की रचना करता है।

प्रत्यक्षवादी पाठक इस कृति को पढ़ते हुए उसकी रहस्यमय व समृद्ध रचनात्मकता दरकिनार करके रचना को कुछ और ही बना डालते हैं जिससे गुहा का सोच संकीर्ण दायरे में बँध जाता है। यह कहना उचित होगा कि प्रत्यक्षवादी ज्ञान-प्रणाली अधिकतर उच्चवर्गीय समाज के दृष्टिकोण को वैज्ञानिक, प्रत्यक्ष और वास्तविक साबित करती है। प्रत्यक्ष वही है जो उच्चवर्गों के लिए लाभदायक है। निम्नवर्गीय जीवन की वास्तविकता, स्त्री-शोषण की परिस्थितियों में स्त्री-अनुभव व दलित वर्गों की अनुभूति, यह सब प्रत्यक्षवाद की परिभाषा व मापदण्ड में टेढ़े-मढ़े, बेढंगे, अटपटे व बेसुरे लगते हैं। निम्नवर्गीय और शोषित वर्गों का अनुभव असत्य साबित किया जाता है अथवा यह मान लिया जाता है कि यह मानसिक बीमारी से उत्पन्न हुआ होगा।

प्रत्यक्षवाद और उच्चवर्गीय समाज औपनिवेशिक इतिहास-लेखन के साथ साझेदारी में है। इसी का विरोध करने के लिए गुहा दो भाषा-संबंधित वस्तुओं का पुनर्निर्माण करते हैं। ये हैं औपनिवेशिक दस्तावेज़ व किसान क्रांतिकारी की भाषाएँ। प्रत्यक्षवादी पाठक औपनिवेशिक दस्तावेज़ को प्रमाण का

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 605

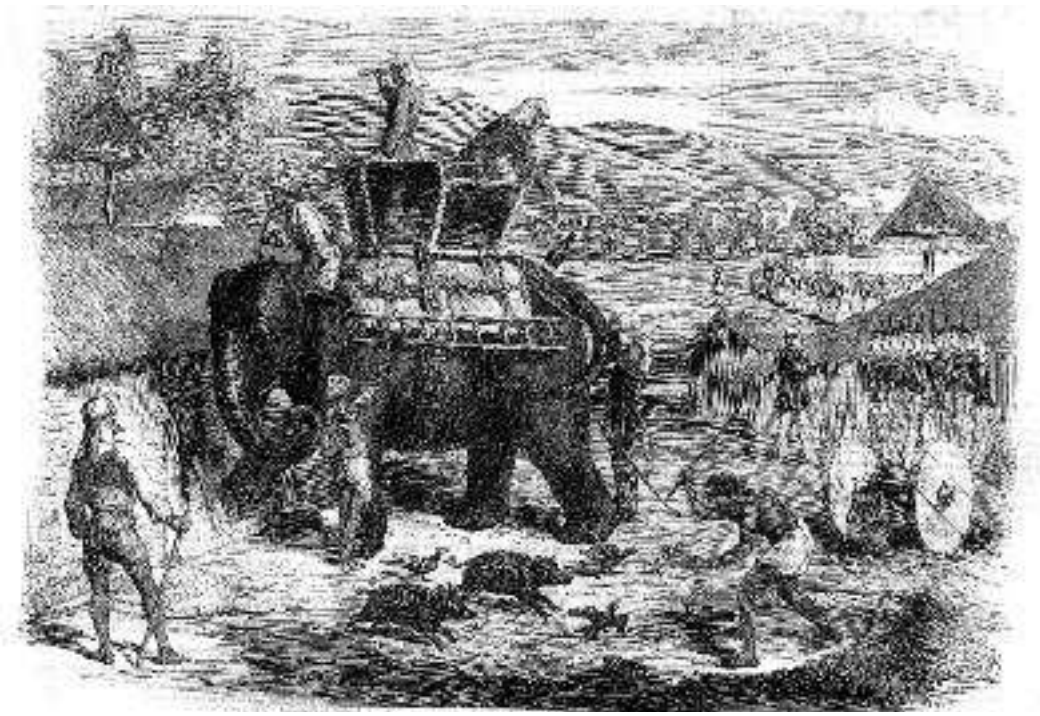

द इलस्ट्रेटेड लंडन न्यूज़ में प्रकाशित चित्र जिसमें ब्रिटिश फ़ौज द्वारा संथाल बागियों की तलाश के लिए चलाया गया अभियान दिखाया गया है.

दर्जा देता है। प्रमाण के रूप में दस्तावेज़ इतिहासकार के तर्क को पुष्ट करता है। हो सकता है कि दस्तावेज़ दूसरे ऐतिहासिक प्रमाणों से जुड़ जाता हो, या दूसरे ऐतिहासिक प्रमाण दस्तावेज़ की प्रामाणिकता को ग़लत साबित करते हों। विश्लेषण के इस तरीक़े में प्रत्यक्षवादी पाठक दस्तावेज़ को एक ठोस सबूत और दस्तावेज़ी तथ्य को एक पथराई हुई निर्जीव जिंस के रूप में देखता है। अपनी प्रस्तावना में गुहा इस फ़ौलादी दस्तावेज़ को पिघलाते हैं। दस्तावेज़ के पिघले हुए मोम में गुहा एक ऐसी अप्रत्यक्ष भाषा का आकार पहचानते हैं जो उनके शब्दों में सत्ता प्राप्त करने के औपनिवेशिक दृढ़ संकल्प है। यह भाषा अप्रत्यक्ष इसलिए है कि डिस्ट्रिक्ट कलेक्टर व ब्रिटिश रेज़िडेंट अपने पत्रों, रपटों, डिस्पैच व मिनट्स में यह स्पष्ट नहीं करते कि निम्नवर्गीय विद्रोह का बयान वे उन पर अपनी सत्ता जमाने के मक़सद से कर रहे हैं। परंतु उनके बयान के हर पहलू में गुहा को यह अप्रत्यक्ष सत्ता या सत्तामूलक भाषा की आकृति दिखती है।

प्रत्यक्षवाद का विरोध करने के परिणाम क्या है ? प्रस्तावना में गुहा भाषाशास्त्री फर्दीनैंद सैस्यूर का उद्धरण यह कहने के लिए देते हैं कि दस्तावेज़ अनुवाद की भाषा है जिसमें जाने-माने अंश का सहारा ले कर अनुवादक एक अनजान अंश का विवरण देता है। सैस्यूर के कथन से गुहा दस्तावेज़ को निर्जीव प्रमाण के दर्जे से निकाल कर जीवंत बना देते हैं। पिघले हुए रूप में दस्तावेज़ हमें ब्रिटिश सरकार के प्रशासकों की चिंता दिखाता है और साथ ही साथ सत्ता का दृढ़ संकल्प भी दिखता है। इन दोनों के मिश्रण से दस्तावेज़ एक औपनिवेशिक हक़ीक़त बताता है जिसमें किसान क्रांति का आँखों देखा हाल, आँकड़े अथवा नामकरण का सत्य उस दूसरी अप्रत्यक्ष भाषा, जिसे गुहा ने 'औपनिवेशिक विल टू पावर' का नाम दिया है, के माध्यम से उभरता है। प्रत्यक्षवादी इतिहास-लेखन का विरोध गुहा ने किया, उस सूरत में भी किया जब उन्होंने पाठकों का परिचय उन शब्दों से कराया जिसे संथाली में

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 606

हूल, बांग्ला और हिंदी में विद्रोह, उर्दू में फ़ितूर, ओराउ में उलगुलान कहते हैं। इन शब्दों का उपयोग पाठकों को सराहनीय लगता है। परंतु अधिकांश पाठकों ने इसे गुहा के भाषा-ज्ञान का प्रमाण माना। गुहा के शब्द-प्रयोग को अधिकतर पाठकों ने *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* से मिलने वाले रस का प्रमुख कारण माना।

गुहा के शब्द-चुनाव के इस पहलू को गहराई से देखें तो इसमें प्रत्यक्षवाद के विरोध की नीति नज़र आती है। अनुशासनिक भाषा-अध्ययन संथाली व ओराउ जैसी निम्नवर्गीय आदिवासी भाषा की विशिष्टता को मान्यता देता है। इसके विपरीत गुहा अपनी शब्द-सूची में शब्द उलगुलान का अर्थ बताने के लिए उसे एक विशिष्ट भाषा ओराउ से नहीं जोड़ते। इसके विपरीत वे 'रिबेलियन : अपराइज़िंग' (पृ. 343) लिखते हैं। यही परिभाषा गुहा ने हूल और फ़ितूरी के लिए (पृ. 340) अथवा विद्रोह (पृ. 339) के लिए भी दी। इस रचना में शब्द-सूची की संबंध-शैली कुछ ऐसी ही है। भाषा की विभिन्नता व विशिष्टता पर ज़ोर डालने के बजाय गुहा इतिहास-लेखन में समक्रमिकता को प्रमुखता देते हैं। दरअसल, समक्रमिकता या सिनक्रोनिसिटी भी अप्रत्यक्ष है। दूसरी ओर वे क्रांति जैसे शब्दों का ऐसा उपयोग करते हैं कि पाठकों को इनमें निहित एक गुप्त इतिहास का एहसास होता है। पाठक-रस की बूँदें टप-टप गिरती हैं और क्रांति की खनक आती है। क्रांति-शब्द से एक लहर निकलती है जो इस रचना में व्यक्त बिरसाई नारे से मिल जाती है— 'खुंती वे रहर जारोमाकाना। दोलाबो भाइये' (खुंती की फ़सल पक गयी, चलो कटाई करें)। मुंडा जाति का क्रांति गीत भी इस लहर में मिल जाता है 'सामारे हिजूलेनाको मार गोयेकोये (साम्बर आ गये, मारो उन्हें')। एक ओर गुहा निम्नवर्गीय क्रांति की सब भाषाओं का सामान्य रूप तलाशते हैं। इसे वे वह मूल सिद्धांत या ऐलिमेंटरी प्रिंसिपल क़रार देते हैं। दूसरी ओर गुहा संथाली भाषा के क्रांति रस का आनंद लेते हैं।

निम्नवर्गीय संदर्भ में बोलचाल की भाषा

पश्चिमी दर्शनशास्त्र व भाषाशास्त्र में बोली-लिखाई का रिश्ता एक दार्शनिक प्रणाली से जुड़ा हुआ है जिसे लोगोसेंट्रिज़म कहते है। बोली आरम्भ, शुद्धता और उपस्थिति का संकेतक और सत्य की वाहक है। लिखाई अशुद्ध, असत्य-मिश्रित, दूसरे दर्जे की व अनुपस्थिति का संकेत है। यह दार्शनिक प्रणाली निम्नवर्गीय संदर्भ पर लागू नहीं होती। कारण यह है कि गुहा के अनुसार किसान विद्रोह का निर्माण व संचालन अकसर लिखे हुए परवाने, घोषणा-पत्र व पैग़ाम से भी किया जाता है। महत्त्वपूर्ण बात यह कि क्रांति का संचालन किसान की बोलचाल की भाषा के माध्यम से भी होता दिखता है।

निम्नवर्गीय संदर्भ में बोली और लिखाई के पारस्परिक संबंध को अनपढ़ और सुशिक्षित वर्गों में बाँट कर समझने से कुछ हासिल नहीं होगा। अक्सर कहा जाता है कि अनपढ़ बोलचाल की भाषा ही समझते हैं, परंतु सुशिक्षित समाज लिखी हुई और बोलचाल की भाषा दोनों का ही उपयोग करता है। गुहा के लिए यह अर्थपूर्ण विभाजन दूसरे तरह का है। गुहा ने किसान-बोली के बारे में दो विरोधी समझों का विवरण दिया है। बोली-लिखाई का संबंध औपनिवेशिक दस्तावेज़ में अलग तरीक़े से व्यक्त होता है। वह पुलिस रपट, सेना के डिस्पैच, सियासी पत्र-व्यवहार, ब्रिटिश रेज़िडेंट व कलेक्टर के विचार-विमर्श के मिनट्स, रेज़ोल्यूशन और क़ानून व कचहरी के रिकॉर्ड के रूप में सामने आता है। गुहा औपनिवेशिक समझ की ख़ास बात यह मानते हैं कि अंग्रेज़ों द्वारा लिखी हुई भाषा का रिश्ता किसान-बोली के साथ परोपजीवी का है। इन रिकॉर्ड्स का अपना अलग अस्तित्व नहीं है। ये दस्तावेज़ जन्म लेते हैं और तभी प्रभावी होते हैं जब गुप्तचरों के ज़रिये किसान-बोली के कुछ अंश अंग्रेज़ों के हाथ लगते हैं। गुहा के अनुसार उच्चवर्गीय औपनिवेशिक लिखाई-बोली का संबंध कुछ ऐसा है जैसे रिकॉर्ड करने के लिए ब्रिटिश सरकार के गुप्तचर छुप कर, कान लगा कर किसानों की बातें सुनते रहते हों (पृ. 15)। गुहा की नज़र में ये दस्तावेज़ एक ऐसा हस्तक्षेप है जो किसान-विमर्श को फैलने

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 607

के पहले ही ज़ब्त कर लेना चाहते हैं (पृ. 15)। गुहा इसे ऑफ़िशियल ईव्ज़ड्रॉपिंग या छुप कर सुनना (पृ. 15) भी कहते हैं। औपनिवेशिक रिकॉर्ड एक विचित्र तरह का लेखन है, जो किसान-बोली की उन्मुक्त सोच को विकृत करता है। इन्हीं कारनामों से दस्तावेज़ की लिखित भाषा सार्थक होती है। किसान-बोली को विकृत करने के लिए दस्तावेज़ इसे विभिन्न रूपों में प्रस्तुत करते हैं— जैसे, किसान-बोली के भेद खोलना, उस बोली पर निगरानी रखना, उसकी पूर्व सूचना देना, उसे षड्यंत्र की निशानी समझना और उस बोली में छुपे हुए सिग्नल या संकेत ढूँढ़ना।

रेखाचित्र : पंकुड़ी दुबे

गुहा की रचना के तहख़ानों में लेखक-पाठक की बातचीत गूँज रही है। इस बातचीत का गुहा अध्यापक के रूप में मार्गदर्शन कर रहे हैं। विद्यार्थी पाठक है जिसे गुहा प्रोत्साहन देते हैं कि ऐसे प्रश्नों का उत्तर ढूँढो : निम्नवर्गीय बोली, अफ़वाह, संदेश, पुलिस को दिये गये बयान किस प्रकार के ऐतिहासिक प्रमाण हैं ?

गुहा निम्न-वर्गों में बोलचाल की भाषा के लिहाज़ से एक अलग तरह की भाषा संबंधी समझ पाते हैं। यह समझ उन्हें मिलती है अफ़वाह में जिसे उन्होंने बोलचाल की भाषा का सर्वोत्तम उदाहरण माना है (पृ. 251)।[12] यह समझ प्रबल होती है निम्नवर्गीय संदेश-प्रणाली में, गिरफ़्तारशुदा किसान अपराधी के पुलिस स्टेशन व कचहरी में दिये गये मौखिक बयान में। सड़क, बाज़ार, मैदान, खेत व सिपाही बैरकों में गुहा इस समझ के दर्शन करते हैं। इस निम्नवर्गीय समझ की विशेषता है कि वह उच्चवर्गीय सरकार, साहूकार और ज़मींदार के साथ संघर्ष करते हुए बोली को गोपनीय, अवाच्य, प्रच्छन्न और सांकेतिक बनाती है। इस समझ में किसान-बोली के अर्थ स्पष्ट होते हुए भी अस्पष्ट हो सकते हैं। किसान-बोली प्रत्यक्ष होते हुए भी अदृश्य होने की सम्भावना रखती है। उच्चवर्गीय दमन और निगरानी से छूटने के लिए निम्नवर्गीय बोली का अर्थ स्थिर नियमों के अनुसार व्यक्त नहीं होता। प्राय: निम्नवर्गीय बोली शब्दों से छूट कर दैहिक संकेत व भंगिमा में प्रकट होती है। कभी-कभी किसान-बोली शब्दों से अलग हो कर खाने की सामग्री को संकेत बनाती है, और कभी किसान-बोली का अर्थ शब्द से मुक्त होकर चित्र-संकेत का अवतार ले लेता है (पृ. 249)।

गुहा द्वारा किया गया किसान-बोली का विश्लेषण अत्यंत प्रभावशाली है। इससे प्रभावित हो कर इतिहासकारों ने राय दी कि गुहा ने इतिहास-लेखन व सीमियोटिक्स यानी लक्षणशास्त्र का मिश्रण किया है। लेकिन मैं ऐसा नहीं समझती। गुहा ने लक्षणशास्त्र के औज़ारों की सहायता अवश्य ली परंतु उसके दायरे में सीमित नहीं रहे। सीमियोटिक्स संकेत-चिह्नों की सूचियाँ बना कर यह उम्मीद करता है कि उसकी संकेत-योजनाओं से सामाजिक जीवन, रचना या संस्कृति का पूरा अर्थ हमारे सामने आ जाएगा। प्रोफ़ेसर मिचिल के मुताबिक़ संकेत-योजना बनाने के प्रयत्न में साइन या संकेत पालतू बना दिया जाता है। लेकिन, इसके विपरीत गुहा की रचना में किसान-बोली के संकेत पालतू नहीं हैं। वहाँ किसान-बोली की उपस्थिति इस प्रकार की है : इतिहास-लेखन कई भागों में बँट जाता है— एक

[12] अफ़वाहों और निम्नवर्गीय सामाजिकता के संदर्भ में शाहिद अमीन की रचना आज भी एक मानक की हैसियत रखती है. देखें, शाहिद अमीन (1995), *ईवेंट, मेटाफ़र, मेमॅरी : चौरी चौरा 1922-1992,* युनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया प्रेस, बर्कले.

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 608

भाग में औपनिवेशिक दस्तावेज़ परोपजीवी है, दूसरी ओर ब्रिटिश संग्रहालय के काग़जात ऑफ़िशियल ईव्ज़ड्रॉपिंग से भरपूर हैं, तीसरी ओर किसान क्रांतिकारी निरंतर चेष्टारत हैं कि क्रांति के संदेश को मौखिक चिह्नों से मुक्त करके दैहिक संकेत, या भोजन संबंधी संकेत, या चित्र-संकेत में ढाल कर उसका संचरण किया जाए। गुहा की रचना में बोलचाल की भाषा का जब भी विश्लेषण आता है, गुहा निम्नवर्गीय संघर्ष के इस पहलू की तरफ़ पाठक का ध्यान खींचते हैं।

गुहा की फ़िलॉलॅजी में बोलचाल की भाषा की प्रधानता का एक और पहलू है जो लेखक-केंद्रित है। गुहा की रचना के तहख़ानों में लेखक-पाठक की बातचीत गूँज रही है। इस बातचीत का गुहा अध्यापक के रूप में मार्गदर्शन कर रहे हैं। विद्यार्थी पाठक है जिसे गुहा प्रोत्साहन देते हैं कि ऐसे प्रश्नों का उत्तर ढूँढो : निम्नवर्गीय बोली, अफ़वाह, संदेश, पुलिस को दिये गये बयान किस प्रकार के ऐतिहासिक प्रमाण हैं? अगर ये प्रमाण हैं तो सामाजिक जीवन के किस हिस्से पर रोशनी डालते हैं? इन प्रमाणों को इतिहासकार पढ़ने की किस प्रणाली के माध्यम से अध्ययन करें?

मार्गदर्शन के लिए गुहा अपनी विश्लेषण शैली के प्रतिमान कुछ इस तरह से खोलते हैं। गुहा का एक सुझाव मध्यस्थता पर ज़ोर देने का है। इतिहासकार को इस भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए कि वह अनुशासनिक ज्ञान-क्षेत्रों के नियमों से मुक्त हो कर निम्नवर्गीय बोली के साथ एक सीधा-सरल संबंध जोड़ सकता है। यह संबंध अधिकतर औपनिवेशिक दस्तावेज़ के माध्यम से बनता है और यह माध्यम निम्नवर्गीय बोली की प्रस्तुति विकृत कर देता है। गुहा की तर्क-प्रणाली का यह निष्कर्ष भी है कि इतिहासकार किसान-बोली की एंथ्रोपोलॅजी में न उलझ जाए। एंथ्रोपोलॅजी के तहत किसान-बोली एक खोयी हुई या लुप्त वस्तु प्रतीत होती है जिसे चिंतक बरामद करता है। इसे हम रिकवरी प्रोजेक्ट कहते हैं। इन बौद्धिक भ्रम से दूर हट कर इतिहासकार की चेष्टा ऐसी होनी चाहिए कि वह निम्नवर्गीय बोली के क्रांतिकारी सोच और उस सोच में छुपी उन्मुक्तता से रिश्ता क़ायम करे।

गुहा की रचना में इस रिश्ते की एक चाह, एक ख़्वाहिश है। इस चाह में तप कर इतिहासकार का दोहरा और अविकसित रूप सामने आता है जिसमें वह भाषाशास्त्री या फ़िलॉलॉजिस्ट की तरह काम करता दिखता है। इतिहासकार के रूप में गुहा किसान-बोली को प्रमाण का दर्जा देते हैं और भाषाशास्त्री के रूप में गुहा कल्पना करते हैं कि किसान-बोली के उन्मुक्त सोच से सम्पर्क करके उन्मुक्त फ़िलॉलॅजी की रचना हो सकती है और क्रांति का इतिहास भी लिखा जा सकता है। इस रिश्ते को क़ायम करने की विधि अद्‌भुत है जिसे मनोवैज्ञानिक ज़िग्मण्ड फ्रॉयड 'अनकैनी' कहते हैं। इतिहास-लेखन में किसान-बोली की उन्मुक्तता से इतिहासकार का सम्पर्क एक भौतिक परंतु ग़ैर-शारीरिक सम्पर्क है। जैसा कि प्रोफ़ेसर चटर्जी ने अपने सम्पादकीय परिचय में कहा था, यह रूपांतर, जिसमें गुहा इतिहासकार से भाषाशास्त्री बन जाते हैं, एक विचार-शृंखला द्वारा होता है। गुहा दर्शनशास्त्र को एक पुल बनाते हैं जिस पर चल कर वे इतिहासकार से भाषाशास्त्री का फ़ासला तय करना चाहते हैं। गुहा के पाठकों को पता ही है कि गुहा जर्मन दार्शनिक मार्टिन हाईडैगर से अत्यंत प्रभावित हैं। मेरा ख़्याल है कि किसान-बोली के उन्मुक्त सोच को ग्रहण करने के लिए उन्होंने उस दार्शनिक प्रवृत्ति का अभ्यास किया है जिसे हाईडैगर ने लिसनिंग यानी आभ्यंतर से सुनना क़रार दिया है। निम्नवर्गीय बोली से साक्षात्कार करते हुए वे सुनने का ऐसा अभ्यास करते हैं जो ऊपरी तौर पर न रह कर बुद्धिजीवी की अंतर्दृष्टि, दार्शनिक मनोवृत्ति, स्मृति और आत्मसमर्पण के माध्यम से होता है।

इस दार्शनिक अभ्यास के तहत चिंतक जब निम्नवर्गीय बोली और गीत को गहराई से सुनता है तो एक सम्भावना उत्पन्न होती है। इस सम्भावना को मैंने ग़ैर-शारीरिक सम्पर्क के दार्शनिक अभ्यास का नाम दिया है। क्या किसान-बोली का उन्मुक्त सोच लेखक की अकादमीय भाषा को छू कर एक स्वावलम्बी सोच पैदा कर सकता है? इस सम्भावना के प्रकट होने का माध्यम फ़िलॅलॉजिकल है। अनुशासनिक ज्ञान-क्षेत्र के नियमों का पालन करके यह उन्मुक्त फ़िलॉलॅजी प्रकट नहीं हो सकती।

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 609

वह टुकड़ों, चिह्नों और लेश मात्र की उपस्थिति में पाई जाती है। उदाहरणत: यह फ़िलॉलॅजी लेखक-केंद्रित किताबी संबंध में पाई जाती है जिसे एडवर्ड सईद ने 'अफ़िलिऐशन' का नाम दिया है।[13] सईद के अनुसार एक किताबी संबंध ऐसा होता है जो अपने ज्ञान-क्षेत्र की रचनाओं से सगे-संबंधी का नाता जोड़ कर बनता है। इसे वे फ़िलिएशन कहते हैं। पर कहीं ज़्यादा महत्त्वपूर्ण किताबी संबंध प्रोफ़ेसर सईद के लिए वह है जो अकादमीय वंश और ख़ानदान का न हो कर स्वच्छंद व स्वावलम्बी दोस्ती और बौद्धिक बातचीत के आधार पर मज़बूत होता है। इसे वे अफ़िलिऐशन कहते हैं। किसान-विमर्श, बोली व संदेश के उन्मुक्त सोच अथवा लेखक के अफ़िलिऐशन का ताल-मेल कैसे सम्भव है? किसान रचना का पात्र है व किसान-बोली रचना का विषय है। अफ़िलिऐशन रचना के लेखक से संबंधित है। प्रत्यक्षवादी के लिए किसान-बोली का अलग स्तर है क्योंकि वह रचना का विषय है। प्रत्यक्षवादी के लिए वे तथ्य विभिन्न श्रेणी में आते हैं जो लेखक की जीवनी से संबंधित हैं। इस संबंध को समझने के लिए हमें प्रत्यक्षवाद के दायरे से बाहर निकलना पड़ेगा।

एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स में उत्तर-औपनिवैशिक समय की अकादमीय बातचीत में बोलचाल की भाषा का एक भिन्न रूप भी सामने आता है। 1970-71 में गुहा की एक महत्त्वपूर्ण चर्चा दिल्ली स्कूल ऑफ़ इकॉनॉमिक्स के माओवादी विद्यार्थियों के साथ हुई थी। फ़िलॉलॅजी के दृष्टिकोण से देखा जाए तो गुहा किसान-बोली का विश्लेषण करते हुए उसे एक ऐसी संकेत-योजना के रूप में पेश करते हैं जिसमें अनेकार्थों का गुण है यानी वह पॉलिसिमिक है (पृ. 245)। इस बहुअर्थों भरे संकेत में छुपी उन्मुक्त सोच का प्रभाव रचना के अफ़िलिऐशन अथवा रचना के सम्भाषण-संबंधी या डॉयलॉजिक स्पेस पर पड़ना असम्भव नहीं है। साइन की पॉलिसी या बहुअर्थी गुण अथवा रचना के डॉयलॉज़िक स्पेस का आकर्षण पारस्परिक है।

पार्थ चटर्जी ने माओवादी छात्रों के साथ गुहा की इस ग़ैर-अकादमीय बैठक की कुछ विशेषताओं पर बल दिया है। इनमें से एक यह है कि उन्मुक्त सोच सुनने के प्रयास की उत्पत्ति है। अध्यापक की भूमिका में गुहा माओवादी छात्रों को सिखाने के फेर में नहीं रहे, बल्कि उन्हें सुना और उनसे सीखा। चटर्जी इस सुनने के भाव को अथवा उन्मुक्त सोच के निर्माण का इस प्रकार विवरण देते हैं, 'यहाँ गुहा उत्तर-औपनिवेशिक वर्तमान से साक्षात्कार कर रहे थे जिसका नतीजा उनकी बौद्धिकता में गहरे परिवर्तन की तरह सामने आया।' चटर्जी के विश्लेषण को मान कर अध्ययन करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि रचना की संवादपरक शैली एक टेक्स्चुअल स्विच है। जिस तरह बिजली का स्विच ऑन करने से कमरे के छोटे-बड़े सामान रोशनी से चमकने लगते हैं, उसी प्रकार लेखक द्वारा किये जाने वाले संवाद एक टेक्स्चुअल स्विच का काम करते हैं जिससे इतिहासकार की सम्बोधन शैली मुखर हो जाती है। उदाहरणत: *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* के उपसंहार में गुहा इतिहासकारों को इस तरह सम्बोधित करते हैं, 'इन अनुसंधानों की रोशनी से यह तो साफ़ ज़ाहिर है कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम औपनिवेशिक युग में ऐसा नहीं था जैसा अभिजन इतिहास-लेखन का दावा है (पृ. 355)।' गुहा के इस कथन की प्रभावकारिता कह रही है कि स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास ऐसा नहीं है जैसे हमें बताया गया है। अपने ज्ञान-क्षेत्र के दायरे में आने वाले इतिहासकारों को सम्बोधित करने वाली गुहा की गम्भीर शैली में उनकी संवादपरकता छिपी हुई है जो एक चुनौती के रूप में आक्षेप करती है : 'तुमने तो आज़ादी की लड़ाई का सच्चा इतिहास लिखा ही नहीं।'

इस चुनौती के उपरांत गुहा मानो उन्हीं माओवादी छात्रों को सम्बोधित करते हैं : भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का वह रूप जो जन-समुदाय की प्रैक्सिस (क्रांतिकारी गतिविधियाँ) से ताल्लुक़

---

[13] एडवर्ड सईद (2000), 'सेकुलर क्रिटिसिज़म', मुस्तफ़ा बयूमी तथा एंड्रयू रूबिन (सम्पा.), *एडवर्ड सईद रीडर*, विंटेज, न्युयॉर्क : 218-242.

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 610

रखता है वह हमेशा कांग्रेस पार्टी के नियमों और गाँधीवाद के सिद्धांतों के अनुरूप नहीं रह पाया। बल्कि जन-समुदाय के आंदोलन की शक्ति काफ़ी हद तक निम्नवर्गों की विद्रोही परम्परा से आयी और यह निम्नवर्गीय क्रांतिकारी परम्परा बहुत पहले से चली आ रही थी जब महात्मा ने भारतीय राजनीति में क़दम भी नहीं रखा था। पहले विश्व-युद्ध के दौरान और बाद में नेहरू ने अपने प्रांत के किसानों को समझने की कोशिश शुरू भी नहीं की थी। इस निम्नवर्गीय परम्परा का प्रभाव न केवल स्वतंत्रता संग्राम और कृषि संबंधों से जुड़ी समस्याओं पर पड़ा, बल्कि इस निम्नवर्गीय परम्परा की आहट शहर की ग़रीब जनता अथवा औद्योगिक श्रमिकों के व्यापक व ज़ोरदार संघर्ष में भी मिलती है (पृ. 335)।

एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स के उपसंहार के इस अंश में ध्वनि अथवा स्वर द्वारा रचना का उन्मुक्त सोच प्रकट होता है। उपसंहार की एक तह में गुहा इस अप्रत्यक्ष सोच को आम जनता की प्रैक्सिस क़रार देते हैं। यह प्रैक्सिस कांग्रेस पार्टी के आंदोलन से अवश्य जुड़ी हुई है पर पूरी तरह उसमें सम्मिलित नहीं है। इस आम जनता की प्रैक्सिस को गुहा निम्नवर्गीय विद्रोही परम्परा के रूप में पेश करते हैं। परम्परा के रूप में यह निम्नवर्गीय विद्रोह एक ऐसी आवाज़, एक ऐसा शोर है जो स्वतंत्रता संग्राम के नारों और कोलाहल के पहले भी था और उस संग्राम के दौरान भी। इसकी उपस्थिति एक आहट है जो गुहा को शहर के ग़रीब व औद्योगिक श्रमिकों के संघर्ष में भी सुनाई देती है।

निम्नवर्गीय प्रैक्सिस की आवाज़ सुनने के प्रयास में गुहा यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि ऐसी कोशिश उच्चवर्गीय इतिहास ने नहीं की। उपसंहार में यह प्रश्न पूछा गया है : ऐसा कौन-सा इतिहास-लेखन होगा जो इस निम्नवर्गीय क्रांति की आवाज़ और उसके शोरगुल को सुनेगा? उत्तर की खोज में गुहा की गद्य शैली दुभाषी बन जाती है। एक ऊपरी भाषा है जो आध्यात्मिक गम्भीरता से सम्पूर्ण है। गुहा ऐतिहासिक समय के शब्द-चित्र बनाते हैं जिसमें निम्नवर्गीय विद्रोह की ध्वनि को 'बहुत पहले' समय की श्रेणी में रखा जाता है। यह बहुत पहले का समय गुहा के लिए महात्मा व नेहरू के स्वतंत्रता आंदोलन से पहले का है। रचना में ऐसा भी स्वर छिपा है जिसमें छात्र-पाठकों के लिए स्नेह और मार्मिकता है। यह संवेदनशील भाषा का चिह्न है।

एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स में गुहा ने सत्तर के दशक के आंदोलनों का समकालीन इतिहास नहीं लिखा है। परंतु गुहा ने उन समकालीन नक्सली विद्रोह, भूदान आंदोलन, मज़दूर-हड़तालों, किसान-आंदोलनों व वनवासी-जागृति के सामने उनका अतीत पेश किया है। अर्थात् एक कृति के रूप में *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* इन आंदोलनों को एक पूर्व-इतिहास देने का प्रयत्न करती है। माओवादी छात्रों से रूबरू हो कर गुहा का उपसंहार एक संदेश भेजता है जो किसान-संदेश की तरह गुप्त भी है और स्पष्ट भी : 'तुम्हारी लड़ाई बहुत अरसे से चल रही थी औपनिवेशिक हिंदुस्तान में। तुम अकेले नहीं हो। निम्नवर्गीय प्रैक्सिस व विरोध परम्परा के सिपाही बेताल बन कर पेड़ पर लटक रहे हैं तुम्हारे मार्गदर्शन के लिए।' यह संदेश गुहा दे पाए क्योंकि उन्होंने किसान-बोली और इतिहास-लेखन की संवादपरकता के विषय में मौलिक रूप से सोचा और लिखा।

पाठकों की दावेदारियाँ

अधिकतर पाठक-केंद्रित साहित्यिक समालोचना को ग्राहकता सिद्धांत के दायरे में रखा जाता है या फिर अकादमीय जत्थेबंदियों का हिस्सा माना जाता है। लेख के इस भाग में पाठकों के बारे में कुछ विचार पेश किये गये हैं। उन्मुक्त फ़िलॉलॅजी में पाठकों की दावेदारियों का क्या स्तर है? पाठकों की दावेदारियों से अलग करके अध्ययन करें तो फ़िलॉलॅजी बेजान, अर्थहीन अथवा असामाजिक प्रतीत होती है। इस कारण इस लेख में *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* पर पाठकों की दावेदारियों को साहित्यिक-ऐतिहासिकता (रवींद्रनाथ की शब्दावली) से जोड़ा है। इसमें मैंने साहित्य-ऐतिहासिकता के भूले-

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 611

बिसरे चिह्न खोजे हैं— मीरां के साहित्य में, अथवा *अर्धकथानक* के सहृदय पाठक में अथवा सूफ़ियाना आशिक़ी के पाठक-इतिहास में। ग्राहकता सिद्धांत में हमें सहृदय पाठक-इतिहास की झलक नहीं मिलती। तर्क के विभिन्न पहलू— फ़िलॉलॅजी में पाठकों की दावेदारियों का स्तर, सहृदय पाठक की बदलती परम्परा की खोज— निम्नवर्गीय संदर्भ के तहत उन्मुक्त फ़िलॉलॅजी में महत्त्व रखते हैं। *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* को मैं समकालीन पाठक-प्रणाली में ही नहीं ढालना चाहती, परंतु उस पाठक-प्रणाली के पूर्व-इतिहास में भी ढालना चाहती हूँ। कारण यह भी है कि पाठकीय दावेदारियाँ और पाठक-परम्परा के इस माध्यम में निम्नवर्गीय व उच्चवर्गीय पाठकों के बीच निरंतर मतभेद रहता है। इन पाठकीय दावेदारियों में सामाजिक संघर्ष में छुपी हुई प्रतिवाद की रेखाएँ दर्ज हैं। पाठकीय मतभेद इस प्रतिवाद को स्पष्ट करता है। यही नहीं, पाठकों की दावेदारियाँ प्रतिवाद की रेखाओं को दृश्यमान बनाती हैं।

युरोप की फ़िलॉलॅजी से पाठक का मतभेद इन मसलों पर है। भाषा की ऐतिहासिकता के स्रोत कहाँ पाए जाते हैं— इस प्रश्न को लेकर उन्नीसवीं सदी की युरोप की क्लासिकल फ़िलॉलॅजी, बाइबिल-आलोचना अथवा रोमानी-फ़िलॉलॅजी में इस आधार पर पाठकों के बीच मतभेद थे। पहला कारण था धार्मिक ग्रंथों को पढ़ने की प्रणाली। धार्मिक ग्रंथ दिव्यवाणी समझे जाने चाहिए, या इन ग्रंथों में निहित मानवीय कल्पना व सामाजिक सोच को प्रधानता दी जानी चाहिए? पाठकों के मतभेद का दूसरा कारण था : उन्नीसवीं शताब्दी में आधुनिक फ़िलॉलॅजी एक विशाल बौद्धिक लहर में उभरी और विकसित हुई। इसकी ताक़त इस विचार से पैदा हुई कि फ़िलॉलॅजी मनुष्य संबंधी ज्ञान-क्षेत्रों में एक विज्ञानशास्त्र है। इसमें बहस का विषय यह था कि इस विज्ञान का नवीन रूप और इसके औज़ार क्या हैं? पाठकीय मतभेद का आख़िरी आधार हमें प्राच्य फ़िलॉलॅजी के इस प्रभावशाली अन्वेषण में मिलता है कि भाषा में मानवीय इतिहास का ऐसा अंश छुपा हुआ है जिसे हम भूल गये हैं। अगर ऐसा न होता तो विलियम जोंस पण्डितों व मुंशियों से यह कैसे सीखते कि इंडो-युरोपियन भाषाओं की जड़ें एक सी हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के युरोप में पुरातन यूनान के साहित्य पर भी पाठकों के बीच मतभेद था। इस पाठकीय मतभेद का फ़िलॅलॉजिस्ट और दार्शनिक फ्रेड्रिख़ नीत्शे ने रूपक के माध्यम से वर्णन किया है।[14] उनके अनुसार क्लासिकल फ़िलॉलॅजी के नूतन रूप ने विज्ञान की पदवी प्राप्त कर ली है। साथ ही साथ विज्ञान के प्रतिद्वंद्वी पुरातन जादू-टोना भी इस फ़िलॉलॅजी में पाया जाता है। नीत्शे का संकेत था कि फ़िलॉलॅजी को सतर्क रहना चाहिए : भाषाशास्त्री वैज्ञानिक ज्ञान-प्रणाली के नवीन सोच को अपनाएँ, परंतु विज्ञानवाद में न फँसें। इसका निष्कर्ष यही निकलता है कि नीत्शे के नज़रिये में फ़िलॉलॅजी के वर्तमान पर कुछ इस प्रकार का साया है। भले फ़िलॉलॅजी अपने आपको एक विज्ञान समझे, परंतु विज्ञानवाद से दूर रहे और साथ-ही-साथ उसका भविष्य अपने आपको एक तरह के काव्यशास्त्र के रूप में भी ग्रहण करे। इसी कारण नीत्शे के रूपक में फ़िलॉलॅजी किताबें खाने वाला कीड़ा भी है और किताबों का रक्षक भी। वह मानवीय भी है और एकाक्ष दैत्य भी है। इस रूपक द्वारा नीत्शे और उनकी फ़िलॉलॅजी की परिभाषा से हमारा परिचय होता है। यह कहना अनुचित न होगा कि नीत्शे ऐसे फ़िलॉलॅजिस्ट माने गये हैं जो भविष्य की फ़िलॉलॅजी के अग्रदूत थे।

निम्नवर्गीय संदर्भ में पाठकों की दावेदारियाँ भारतीय इतिहास-लेखन व साहित्य के क्षेत्रों में कुछ दूसरी तरह की समस्याओं से जूझती हैं। ये समस्याएँ युरोप की बौद्धिक समस्याओं से भिन्न हैं, यद्यपि

---

[14] ऑस्कर लेवी (सम्पा.)(2006), *फ्रेड्रिख़ नीत्शे, होमर ऐंड क्लासिकल फ़िलॉलॅजी*, अनुवाद : जे.एम. केनेडी. www.gutenberg.org/files. पर उपलब्ध.

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 612

युरोप की फ़िलॉलॅजी इन बहसों में अवश्य भाग लेती है। इस भिन्न प्रश्न का रूप यह है कि विश्लेषणपरक भाषा के तहत मानवीय इतिहास के चिह्न किस सीमा तक निम्नवर्गीय व उच्चवर्गीय पाठकों की दावेदारियों में हैं ? अनुशासनिक पश्चिमी फ़िलॉलॅजी में पाठकीय प्रतिक्रिया सिर्फ़ एक छोटी भूमिका निभाती है और अधिकतर ग्राहकता सिद्धांत द्वारा समेट ली जाती है। इन भाषाशास्त्रीय परम्पराओं में अक्सर भाषा का ऐतिहासिक चिह्न व्युत्पत्ति में पाया जाता है। भाषाशास्त्री कुछ ऐसी समस्याओं का अध्ययन करते हैं, जैसे शब्दों के बदलते अर्थ, तत्सम और तद्भव, नवीन शब्दों का निर्माण, शब्दों का दुरुपयोग। इन सभी समस्याओं को सुलझाने में भाषाशास्त्री भाषा की ऐतिहासिकता ढूँढ़ते हैं। अनुशासनिक भाषाशास्त्र हर रचना के इन पहलुओं में ऐतिहासिक चिह्न ढूँढ़ता है— कब, कहाँ, कैसे, क्यों, किसके द्वारा और किसके लिए लिखी गयी, किस सामाजिक परिस्थिति में और सांस्कृतिक पैमाने पर कृति की रचना हुई, कृति की सही आयु क्या है, कृति के कौन से भाग विशुद्ध हैं, कृति के कौन से भाग प्रक्षिप्त हैं ? परंतु निम्नवर्गीय पाठक के दृष्टिकोण से देखा जाए, उनकी दावेदारियों को सम्मान दिया जाए और उनकी पढ़ने की प्रणाली को मान्यता दी जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि इतिहास-लेखन व साहित्य की भाषा के ऐतिहासिक चिह्न दूसरे अंशों में भी छुपे हुए हैं। जैसे, लेखक-छवि, रचना की रचनात्मकता पर प्रतिवाद और निम्नवर्गीय पाठक का स्वयं-निरूपण।

गुहा का कथन है कि भारतीय इतिहास के महत्त्वपूर्ण अंश साहित्य-ऐतिहासिकता में मिलते हैं। लेकिन, उन्हें आधुनिक इतिहास-लेखन में इस साहित्य-ऐतिहासिकता का अभाव दिखता है। गुहा की रचनाओं के इर्द-गिर्द पाठकों की दावेदारियों की फ़िलॅलॉजिकल महत्ता पूरे तौर से समझने के लिए हमें एक पल के लिए मीरां की पदावली पर ध्यान देना होगा। दरअसल, चौदहवीं शताब्दी से आज तक निम्नवर्गीय पाठक-समूह व उच्चवर्गीय पाठकों के बीच दावेदारियों का ऐसा सिलसिला चला आ रहा है जिसमें सामाजिक प्रतिवाद की रेखाएँ अंकित हैं। उच्चवर्गीय मीरां देवी है, निम्नवर्गीय मीरां बावरी है। उच्चवर्गीय मीरां की छवि आसन ग्रहण किये हुए आँखें मूँद कर वीणा बजाने वाली है, मानो उन्होंने संसार त्याग दिया हो। इस छवि में वह अभिजात्य राजपूत समाज से विरक्त भी है। निम्नवर्गीय पाठकों की मीरां-छवि में अधिकतर वे घुँघरू पहन कर नाचती पाई जाती हैं और साथ में स्त्री-असंतोष का प्रतीक भी है। वे ग़रीब जनता के साथ जगह-जगह भटकती हैं और तीर्थाटन करती हैं। निम्नवर्गीय पाठकों को मीरां द्वारा गिरिधर के लिए नाचने व जगह-जगह भटकने में भौतिक-सामाजिक अवज्ञा की सांकेतिक प्रतीति मिलती है। उच्चवर्गीय राजपूत्र स्त्रियों ने 1990 में शोधार्थी लिंडसे हारलन के सामने मीरां की अपनी पाठकीय गढ़ंत पेश की।[15] उन्हें डर था कि कहीं मीरां के पद उनके स्त्री-धर्म को भ्रष्ट न कर दें।

इस पाठक-कवयित्री संबंध के विपरीत परिता मुक्ता ने निम्नवर्गीय अहीरों की टोली से सौराष्ट्र में बातचीत की।[16] इन ग्वालों और अहीर-जाति के सदस्यों ने मीरां की कल्पनाशीलता के साथ एक ऐतिहासिक संबंध जोड़ा। अपने उत्पीड़नकारी वर्गों का और मीरां को विष का प्याला भेजने वाले सिसोदिया राजपूतों के बीच ये अहीर पाठक एक संबंध बनाते हैं। इन पाठकीय दावेदारियों में मतभेद का कारण राजस्थान अथवा सौराष्ट्र का इतिहास है। सवाल यह है कि यह इतिहास उच्चवर्गों के

---

[15] लिंडसे हारलेन (1991), *रिलीजन ऐंड राजपूत वुमॅन : द इथिक्स ऑफ़ प्रोटेक्शन इन कंटेम्पररी नैरेटिव्ज़*, युनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफोर्निया प्रेस, बर्कले : 205. इस संदर्भ में मेरा एक अन्य लेखक के साथ मिल कर लिखा गया लेख भी देखें, 'मीराज़ मिडीवल लिरिक पोएट्री इन पोस्ट-कोलोनियल इण्डिया : द रेटरिक्स ऑफ़ वुमंस राइटिंग इन डायलेक्ट ऐज़ अ सेकुलर प्रैक्सिस ऑफ़ सबाल्टर्न को-ऑथरशिप ऐंड डिसेंट', *बाउंड्री 2*, शरद् 2004, 31(3) : 7-48.

[16] परिता मुक्ता (1998), *अपहोल्डिंग द कॉमन लाइफ़ : द कम्युनिटी ऑफ़ मीरांबाई* (जेण्डर स्टडीज़), ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली : 10.

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 613

दृष्टिकोण से लिखा जाएगा या फिर राजस्थान के स्त्री-साहित्य, लोकगीत व लोककथाओं में उच्चवर्गीय दमन के विद्रोह का इतिहास दर्ज होगा? मैं ज़ोर देना चाहती हूँ कि पाठकों की दावेदारियाँ फ़िलॉलॅजी का महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं जिनसे सामाजिक प्रतिवाद की रेखाएँ स्पष्ट होती हैं और पाठक-सर्जित लेखकीय आकृति का सम्पूर्ण प्रभाव मिलता है और रचनात्मकता की भिन्न परिभाषा सामने आती है।

उच्चवर्गीय पाठकों को प्रधानता देने वाली अनुशासनिक फ़िलॉलॅजी मीरां-साहित्य की ऐतिहासिकता इस मापदण्ड से नापती है कि कौन से मीरां पद स्वयं मीरां के रचे हुए हैं और कौन से पद प्रक्षिप्त हैं। इसके विरोध में निम्नवर्गीय मीरां की पहचान इसमें है कि उनकी पदावली व्यक्तिगत न होकर सामूहिक हैं जिसमें लेखिका और भक्तिन की छवि स्पष्ट रहती है, परंतु पदावली की रचनात्मकता व्यक्तिगत अभिव्यक्ति न रह कर सह-रचना या को-राइटिंग को प्रोत्साहित करती है। इसी कारण 1990 के सौराष्ट्र में परिता मुक्ता ने देखा कि मीरां की पदावली का एक मुखड़ा या पंक्ति लेकर अहीर गायक अपनी रचना जोड़ देते हैं। इन दावेदारियों में स्त्री-साहित्य व निम्नवर्गीय इतिहास से संबंधित प्रविवाद से हमें ज्ञात होता है कि साहित्य-ऐतिहासिकता हमारे रोज़ाना के जीवन के कण-कण में है परंतु गांधारी की तरह अनुशासनिक ज्ञान की विचार-प्रणाली ने हमारी आँखों पर पट्टी बाँध रखी है। मीरां के पाठकों की दावेदारियों से प्रेरणा लेकर मैं इस लेख में *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* पर पाठकों की दावेदारियों को गहराई से समझने का प्रयत्न कर रही हूँ।

रेखाचित्र : अंकिता श्रीवास्तव

उच्चवर्गीय मीरां देवी है, निम्नवर्गीय मीरां बावरी है। उच्चवर्गीय मीरां की छवि आसन ग्रहण किये हुए आँखें मूँद कर वीणा बजाने वाली है, मानो उन्होंने संसार त्याग दिया हो। इस छवि में वह अभिजात्य राजपूत समाज से विरक्त भी है। निम्नवर्गीय पाठकों की मीरां-छवि में अधिकतर वे घुंघरू पहन कर नाचती पाई जाती हैं और साथ में स्त्री-असंतोष का प्रतीक भी है। वे ग़रीब जनता के साथ जगह-जगह भटकती हैं और तीर्थाटन करती हैं। उच्चवर्गीय राजपूत स्त्रियों को डर था कि कहीं मीरां के पद उनके स्त्री-धर्म को भ्रष्ट न कर दें।

गुहा की रचनाओं पर पाठकों की दावेदारियों में पाठकों का वर्गीकरण इस प्रकार है। भारतीय इतिहास-लेखन कई तरह से पढ़ा जाता है। पढ़ने की कुछ प्रणालियाँ प्रधान क़िस्म की हैं, और कुछ अधीनस्थ क़िस्म की। यह वर्गीकरण जिस तरह प्रचलित हुआ है, उस पर हमें ध्यान देना चाहिए। दरअसल, पूर्व-औपनिवेशिक समाज में हर बौद्धिक बहस का आरम्भ और अंत इतिहास-लेखन की चौखट से गुज़रता है। गुहा की रचनाओं पर होने वाली क़िस्म-क़िस्म की दावेदारियों की विभिन्नता मार्क्सवादी, राष्ट्रवादी और केम्ब्रिज स्कूल के मतभेदों में नहीं मिलती। इस अकादमीय पाठक-समूह के पहले ही ऊपर बताए गये दूसरे तरह के वर्गीकरण सामने आ जाते हैं। यह एक ऐसी पढ़ने की प्रणाली है जिसके फलस्वरूप बौद्धिक सम्मान मिलता है और उससे निकले नतीजों अथवा विश्लेषण प्रणाली को विद्या-संस्थाओं में

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 614

ज़ाक देरिदा ने टिप्पणी की थी कि मार्क्स की रचनाओं के बारे में लिखी गयी कुछ ऐसी कृतियाँ हैं जिनमें मार्क्स के लेख बपौती जैसे लगते हैं। देरिदा इन मार्क्सवादी चिंतकों को मार्क्स के बेटे कह कर बुलाते हैं।... गुहा की स्वयंभू संतानों और अधिकृत वारिसों का समूह एक ओर, और अनधिकृत पाठक समूह दूसरी ओर।

पढ़ाया जाता है। इस पर किताबें छपती हैं और पत्रिकाओं में प्रकाशन होता है। इस प्रधान क़िस्म की पाठक-प्रणाली में लेखक-छवि, स्वयं-निरूपण व रचनात्मकता के विषय में विचार अदृश्य रहते हैं। विश्वविद्यालयीय माहौल में यह पाठक-प्रणाली बौद्धिक सत्य के रूप में सम्मानित की जाती है। दूसरी तरफ़, अधीनस्थ पाठक-प्रणाली की विशेषता है हास्य, विनोद और अपनेपन से व्यक्त किये गये मतभेद। दार्शनिक ज़ाक देरिदा ने टिप्पणी की थी कि मार्क्स की रचनाओं के बारे में लिखी गयी कुछ ऐसी कृतियाँ हैं जिनमें मार्क्स के लेख बपौती जैसे लगते हैं। देरिदा इन मार्क्सवादी चिंतकों को मार्क्स के बेटे कह कर बुलाते हैं।[17] इस व्यंग्यात्मक संकेत का अर्थ यह है— जब प्रतिष्ठित पाठक स्वच्छंद व स्वावलम्बी संबंध की सीमा पार कर के सगे-संबंधी का किताबी संबंध जोड़ लेते हैं तो पाठकों की दावेदारियाँ कुछ इस प्रकार की हो जाती हैं : गुहा की स्वयंभू संतानों और अधिकृत वारिसों का समूह एक ओर, और अनधिकृत पाठक समूह दूसरी ओर।

अधिकृत वारिस-पाठकों की परिभाषा इस प्रकार है : सबसे ऊँचा स्थान उन सहयोगियों का है जिन्होंने गुहा के साथ सफ़र तय किया, बैठकें जमाईं, तीन दशक तक उनके साथ निम्नवर्गीय संदर्भ कलेक्टिव के संस्करण तैयार किये।[18] गुहा के वारिस-पाठकों में वे भी सम्मिलित हैं जिनकी गुहा के लेखों पर समीक्षा प्रतिष्ठित हो चुकी है। उल्लेखनीय है कि पाठकीय दावेदारियों के इस ढाँचे में सीमा-रेखा स्थिर नहीं है और दोनों पाठक-समूहों का संबंध आत्मीयता का है। परंतु बात अधिकृत वारिस-पाठक तक सीमित नहीं रहनी चाहिए, क्योंकि यहाँ एक मूल सिद्धांत दाँव पर लगा हुआ है। यह है *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* के पुनर्निधारण और उसकी प्रासंगिकता का। यह सिद्धांत है 'किसान-क्रांति तब और आज' का है।[19] इस सिद्धांत के आधार पर वाद-विवाद का विषय इस रूप में भी समझा जा सकता है— *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स*

---

[17] ज़ाक देरिदा (1999), ' मार्क्स ऐंड संस', माइकेल स्प्रिंकलर (सम्पा.), *घोस्टली डिमारकेशंस : अ सिम्पोज़ियम ऑन ज़ाक देरिदाज़ स्पेक्टर्स ऑफ़ मार्क्स* , वर्सो, लंदन : 213-269.

[18] गुहा के कृतित्व से संबंधित विमर्श के लिए विवेक छिब्बर की पुस्तक *पोस्ट-कोलोनियल थियरी ऐंड द स्पेक्टर ऑफ़ कैपिटल* की समीक्षा देखें, गायत्री चक्रवर्ती स्पिवाक (2014), 'पोस्ट-कोलोनियल थियरी ऐंड द स्पेक्टर ऑफ़ कैपिटल', *केम्ब्रिज रिव्यू ऑफ़ इण्टरनेशनल अफ़ेयर्स* , खण्ड 27, अंक 1 : 184-213.

[19] सीएसडीएस ने रणजीत गुहा के 90वें जन्मदिन के उपलक्ष में 15, 16 फ़रवरी, 2013 को एक दो-दिवसीय कार्यक्रम आयोजित किया था. इस गोष्ठी का शीर्षक था 'द पैज़ेंट दैन ऐंड नाऊ : रणजीत गुहाज़ ऐलिमेंटरी आस्पेक्ट्स ऑफ़ पैज़ेंट इंसर्जेंसी आफ़्टर थर्टी ईयर्स'. इस अवसर पर मैंने अपना आलेख अंग्रेज़ी में प्रस्तुत किया था. प्रस्तुत लेख का पहला मसविदा अंग्रेज़ी के उसी लेख पर आधारित है. मुझे शैल मायाराम के ई-मेल से पता चला है कि उस पैनल-परिचर्चा की वीडियो-रिकॉर्डिंग की गयी थी. सीएसडीएस के तमाम वीडियो कार्यक्रमों में यह वीडियो सबसे ज़्यादा देखा गया है. इतना ही नहीं, वह कार्यक्रम सीएसडीएस की पचासवीं वर्षगाँठ पर आयोजित किये जाने वाले कार्यक्रमों में सबसे लोकप्रिय भी रहा. गुहा की पुस्तक की प्रासंगिकता के संदर्भ में देखें, शैल मायाराम (2014), 'पैस्टोरल प्रेडिकामेंट्स : द गुज्जर्स इन हिस्ट्री', *कंट्रीब्यूशंस टू इण्डियन सोसिओलॅजी* , खण्ड 48, अंक 2 : 191-222.

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 615

के उन्मुक्त चिंतन का आधार क्या है, गुहा को इस आज़ाद सोच के लिए प्रेरणा कहाँ से मिली और उन्मुक्त सोच में निहित समाज-चिंतन के स्रोत क्या हैं ?

इन प्रश्नों के उत्तर में अधिकृत और अनधिकृत पाठकों का अंतर सामने आता है। गुहा को सम्मान दोनों तरह के पाठकगण देते हैं, परंतु सम्मान की विधि भिन्न है। अधिकृत वारिस की सम्मान-प्रणाली में गुहा को स्नेह और आदर से मास्टर या उस्ताद कहा जाता है। अनधिकृत पाठक गुहा का आचार्यत्व उनके असंतोष में देखते हैं। वे गुहा को सम्मान देते हैं क्योंकि उनके लिए गुहा विक्षोभ के सिद्धांतकार हैं। इन पाठकों का कथन है कि गुहा ने अनुशासनिक ज्ञान-प्रबंधों और सिद्धांतों से असंतुष्टि का अनुक्रम बनाया है। इन पाठकों के लिए *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* के लेखक की छवि एक यायावर पथिक की है जो भारतीय इतिहास, दर्शनशास्त्र व भाषाशास्त्र की हक़ीक़तों को ढूँढ़ने निकला है। अधिकृत वारिस अपनी पढ़ने की प्रणाली को सार्वभौम अकादमिक सत्य मानते हैं। अनधिकृत पाठकों का पूरा ध्यान किसान-बोली और किसान-क्रांति से आरम्भ होकर गुहा की विश्लेषण प्रणाली और वर्णन शैली पर रहता है। वे उस उन्मुक्तता को पढ़ने की प्रणाली से जोड़ने के चक्कर में रहते हैं ताकि पाठक भी उन्मुक्त सोच का सहभागी हो सके।

एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स को पढ़ते समय कुछ पाठक सहृदय पाठक-परम्परा से जुड़ जाते हैं। सत्रहवीं शताब्दी की रचनाओं में सहृदय पाठक-परम्पराओं पर सूफ़ी काव्य की पाठकीय परम्परा का प्रभाव पड़ा। इसमें एक विचारधारा थी निम्नवर्गीय जनता, भाषा, लोक-कथा और आशिक़ी की भावना से सुनना। ज़रूरी नहीं कि धर्म-परिवर्तन का उद्देश्य ही इसके पीछे हो, हालाँकि इस प्रभाव के ज़रिये सहृदय पाठक को अपना धर्म नूतन विचारों से समृद्ध करने का मौक़ा मिलता था। इस पाठक-परम्परा का वर्णन हमें जैन आध्यात्मिक कवि व भाषाशास्त्री बनारसी दास की विख्यात रचना *अर्धकथानक* में मिलता है। बनारसी दास ब्रजभाषा में बताते हैं कि वे अपने दोस्तों को सूफ़ी काव्य गाकर सुनाते थे। नीचे लिखी हुई काव्य पंक्ति में बनारसी दास बताते हैं कि किस तरह सहृदय पाठक-परम्परा का मिश्रण सूफ़ी काव्य की पाठक-परम्परा के साथ हुआ :

मधुमालती मृगावती। पोथो दोऊ उदार।
ते बाँचे रजनी समय। आवहि नर दस बीस।
गावही अरु बातें करहि। नित उति देही असीस।[20]

इस काव्यांश में पाठकगण न्यायाधीश या वारिस नहीं हैं, बल्कि सूफ़ी कवि का सहयोगी है। ऐतिहासिक ढाँचे में गुहा के अनधिकृत पाठकों द्वारा अपनाई जाने वाली पढ़ने की प्रणाली देखी जाए तो इसकी परिभाषा ऐसी है। लेखक-पाठक के बीच में सहयोगी का संबंध मानसिक व बौद्धिक अवश्य है पर प्रमुखता हृदय को ही दी जाती है। सहृदयता से पढ़ने का अर्थ है पाठकीय संवेदना, चेतना व सहानुभूति पर ज़ोर डालना। सहृदय पाठक को उन्नीसवीं सदी के युरोप की स्वच्छंदतावादी विचारधारा या यूनानी दार्शनिक अरस्तू के कैथारसिस सिद्धांत के साथ जोड़ना नहीं चाहिए, क्योंकि पाठकीय प्रतिक्रिया के बारे में भारतीय सौंदर्यशास्त्र एक बहु-विकसित विमर्श है। सहृदय पाठक जिस संतुलन का अभ्यास करता है उसे भावुक लगाव नहीं मानना चाहिए। सहृदय पाठक रचना का हितैषी

---

[20] इस उद्धरण के लिए देखें, नाथूराम प्रेमी (1957) (सम्पा.), *बनारसी दास, अर्धकथानक* , ग्रंथ रत्नाकर, बम्बई.

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 616

नीत्शे के रूपक में फ़िलॉलॅजी किताबें खाने वाला कीड़ा भी है और किताबों का रक्षक भी। वह मानवीय भी है और एकाक्ष दैत्य भी है। इस रूपक द्वारा नीत्शे और उनकी फ़िलॉलॅजी की परिभाषा से हमारा परिचय होता है। यह कहना अनुचित न होगा कि नीत्शे ऐसे फ़िलॉलॅजिस्ट माने गये हैं जो भविष्य की फ़िलॉलॅजी के अग्रदूत थे।

नहीं है, और न ही सहृदय पाठक विचारच्युत मोह में रचना का साक्षात्कार करता है।

एक क्षण के लिए कवि बनारसी दास की ओर जाएँ तो उनकी रचना में हमें इस प्रभावशाली ऐतिहासिक परिवर्तन की एक झलक मिलती है। इसका वर्णन साहित्येतिहास में दर्ज नहीं है परंतु इसकी झलक साहित्यिक कृतियों में अंकित है। यह ऐतिहासिक परिवर्तन गुहा की रचनाओं के विषय में प्रासंगिक है। सहृदय पाठक-परम्परा में अवधारणा दी जाती है कि पाठक एक संतुलन की तलाश में है। सहृदय पाठक रचना को अपने हृदय की कल्पना-शक्ति व संवेदना से ग्रहण करता है। इसका उदाहरण बनारसी दास में है जब वे *मधुमालती* व *मृगावती* जैसे सूफ़ी काव्यों को हृदय से समझते हैं, गा कर और बाँच कर सुनाते हैं। सूफ़ी काव्यों को सुनने वाले बनारसी दास को आशीर्वाद देते हैं। चूँकि सहृदय पाठक ने सूफ़ी काव्य के संदर्भ में यह बयान दिया है, इसलिए एक दूसरी पाठक-प्रणाली से हमारा परिचय हो जाता है। सूफ़ी पाठक-प्रणाली में पाठक आशिकी की भावना में अपने आप को खो देता है। खो जाना एक ऊपरी असंतुलन है, लेकिन इसकी गहराइयों में एक गहरा संतुलन भी है जो पाठक की आत्मा से संबंधित है। इन दोनों पाठक-प्रणालियों के सम्मिश्रण में हमें गुहा के अनधिकृत पाठक की पढ़ने की प्रणाली का ऐतिहासिक रूप मिलता है। सहृदय पाठक व सूफ़ी काव्य से प्रभावित पाठक *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* के रचनाकार का काल्पनिक सहयोग इस प्रकार करते हैं कि रचना उपसंहार के साथ समाप्त नहीं होती है ,परंतु असीमित कथा का रूप ले लेती है।[21]

सहृदय पाठक-प्रणाली अथवा प्राक्-औपनिवेशिक पाठक के बीच शृंखला टूटती और बिखर जाती है, क्योंकि दोनों के बीच औपनिवेशिक युग आधुनिकता के मापदण्ड बनाता है, न केवल इतिहास-लेखन के लिए बल्कि पाठक के लिए भी। औपनिवेशिक आधुनिकता से जूझने के लिए गुहा के पाठक को गुहा के इस प्रसिद्ध तर्क पर ध्यान देना आवश्यक है : औपनिवेशिक ब्रिटिश सरकार की सत्ता दमन का वह रूप है जिसे प्रजा की सहमति पूरी तौर से न मिल सकी।[22] गुहा ने इसे ही वर्चस्वहीन प्रभुत्व की संज्ञा दी है। यही है वह वर्चस्वहीन प्रभुत्व जिसके तहत पाठक एक ऐसे बौद्धिक अनुशासन पर अपना दावा करते हैं जो अनुशासनिक ज्ञान-क्षेत्र का प्रतिद्वंद्वी है।

पढ़ने के इस बागी अनुशासन को रूपक द्वारा ही व्यक्त किया जा सकता है। गुहा के अनधिकृत

---

[21] सीएसडीएस की पूर्वोक्त परिचर्चा के प्रश्नोत्तर सत्र के दौरान रविकान्त ने यह टिप्पणी की थी कि *ऐलीमेंटरी आस्पेक्ट्स ऑफ़ पैजेंट इंसर्जेंसी* के पाठ में दास्तान का तत्त्व भी देखा जा सकता है.

[22] रणजीत गुहा (1988), *डॉमिनेंस विदाउट हैजेमनी : हिस्ट्री ऐंड पावर इन कोलोनियल इण्डिया*, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 617

पाठक डाकुओं के समान हैं। ये पाठक रचना की डकैती करते हैं और रचना पर डकैती करते हैं। डकैती ऐसा रूपक है जिसके ऐतिहासिक रूप की विभिन्न परिभाषाएँ हैं। औपनिवेशिक दस्तावज़ों के मुताबिक़ डाकू का मतलब है हिंसा, लूटमार और ज़ोर-ज़बरदस्ती। परंतु ग्रामीण क्षेत्रों में निम्नवर्गीय नज़रिये से डाकू की परिभाषा अलग है। किसान व श्रमिक दृष्टिकोण में डाकू की परिभाषा एक ऐसे अनुशासन के निर्माण के समकक्ष है जो सरकारी दमन व ज़मींदारी अन्याय के विपरीत दूसरे तरह के न्याय और लोक-कल्याण की कल्पना करता है। सहृदय पाठक का *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* पर दावा एक बौद्धिक डकैती का रूप ले लेता है जब वह अनुशासनिक ज्ञान-क्षेत्र से रचना को छुड़ाने की कल्पना करता है और उसके कान रचना के उन्मुक्त सोच को सुनने का प्रयास करते हैं। सहृदय पाठक और बौद्धिक डकैती का मिश्रण उस पाठकीय प्रतिक्रिया में व्यक्त होता है जब पाठकगण *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* को जेल से छुड़ा कर डकैतों की तरह जंगल में ले जाते हैं। जंगल की खुली जगह में ये डकैत पाठक *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* की गोपनीय तहों व अंदरूनी ख़ज़ानों को टटोलते हैं। पाठक *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* के तहख़ानों में दफ़्न गुहा के अरमानों और सुप्त आकांछाओं को सामने लाना चाहता है जिन्हें गुहा खुल कर व्यक्त नहीं कर सकते थे।

फ़िलॉलॅजी के रूप में पाठकीय दावेदारियों का सम्पूर्ण प्रभाव *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* की रचनात्मकता पर दिखता है। वारिस-पाठक न्यायाधीश हैं। इस कारण वे रचना की सफलता की प्रशंसा करते हैं और रचना की विफलता को उसकी ख़ामियाँ मानते हैं। सहृदय-डकैत पाठक अलग तरह से सोचता है। उसका ध्यान *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* के उन पहलुओं पर है जहाँ गुहा एक बौद्धिक प्रश्न को ले कर अपने प्रयत्न और पराजय को नाटकीय शैली में पाठक के सामने लाते हैं। इसे परफ़ार्मेंस ऑफ़ फ़ेलियर या सिग्नीफ़िकेंट फ़ेलियर कहा जाता है। कुछ ऐसी महान रचनाएँ हैं जो अपनी कमियों को छुपाती हैं और बेलौस प्रतीत होती हैं। इसके विपरीत *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* विलक्षण व रहस्यमय रूप से सिद्धो और कान्हा की विजय-पराजय और 1857 के सिपाहियों और किसानों की विजय-पराजय का अनुकरण इस प्रकार करता है कि बौद्धिक विजय-पराजय का उतार-चढ़ाव भी क्रांति के इतिहास-लेखन का आवश्यक अंग प्रतीत होने लगता है।

दूसरी तरफ़, रचना के प्रयत्न और पराजय के सामने सहृदय पाठक लेखक का हितैषी नहीं बनता। दरअसल, उसकी डकैती इसी में है कि वह *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* की रचनात्मकता और उसकी पराजय को बहुअर्थी समझता है। सहृदय पाठक गुहा की अभिप्रायपूर्ण विफलता को रचना की खूबी मानता है कुछ उसी तरह जैसे गाँधी सत्य को प्रयोगात्मक मानते थे। गाँधी के अनुसार उन्मुक्त सोच वैज्ञानिक प्रयोग शैली पर निर्भर है। [23] इसे उन्होंने *मेरे सत्य के साथ प्रयोग* क़रार दिया था। गाँधी की विचारधारा में बौद्धिक विफलता एक ख़ास अहमियत रखती थी। वैज्ञानिक प्रयोग शैली में विफल प्रयोग से ही सफल प्रयोग उत्पन्न हो सकते हैं। यही नहीं, भारतीय स्त्री-काव्य इतिहास में विफलता की महत्ता मीरां के विरह-रस में मिलती है। विरह-रस में मीरां नाटकीय तौर से अभिप्रायपूर्ण विफलता का वर्णन करती हैं। वे अपना विश्वास खो देती हैं और अपनी पराजय को विरह-रस में स्वीकार करती हैं।[24] रचनात्मकता सहृदय पाठक के दृष्टिकोण से एक आधी-अधूरी शै है। *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स*

---

[23] *माई एक्सपैरिमेंट विद ट्रुथ* का मूल संस्करण गुजराती पत्रिका *नवजीवन* में 1925-1929 के दौरान प्रकाशित हुआ था. इसका हिंदी अनुवाद महादेव देसाई ने किया था और वह *यंग इण्डिया* में 1928-1929 के दौरान *सत्य का प्रयोग* नाम से प्रकाशित हुआ.

[24] बिरहा साहित्य के विषय में देखें, हजारी प्रसाद द्विवेदी (2008), 'बिरहा और अकेलेपन के लिए नया अर्थ', परमानंद श्रीवास्तव (सम्पा.), *महादेवी,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद. बिरहा रस पर मेरा एक लेख देखें, रश्मि दुबे भटनागर (2014) ' फेमिनिनएक्रिचर, ट्रेस ऑब्जेक्ट्स ऐंड द डैथ ऑफ़ ब्रज', ज्ञानेंद्र पाण्डेय (सम्पा.), *अनआर्काइव्ड हिस्ट्री; द 'मैड' ऐंड द 'ट्रिफलिंग' इन द कोलोनियल ऐंड पोस्ट-कोलोनियल वर्ल्ड,* रौटलेज, न्युयॉर्क : 75-95.

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 618

का अधूरापन एक संकेत है। इन अधूरे अंशों में गुहा पाठकगण व आने वाले भविष्य के इतिहासकारों को सम्बोधित करते हैं। भविष्य के पाठकों से *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* जैसी कृति यह आशा करती है कि वह इन अधूरे अंशों की पूर्ति करते हुए इसे विकसित करेंगे। ऐसे दो आधे-अधूरे अंशों का उल्लेख इस लेख के अंतिम हिस्से में है।

किसान क्रांति : गुहा की आधी-अधूरी कोशिश (1)

सहृदय पाठक-प्रणाली के तहत पाठक यह नहीं भूलता कि *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* में निम्नवर्गीय औरतों का किसान विद्रोह अथवा क्रांति की भाषा में स्त्रियों का योगदान गुहा की बौद्धिक योजना के बाहर है।[25] यह जानीमानी बात है कि गुहा ने नारीवादी इतिहास-लेखन के प्रश्नों और खोजों के साथ संवाद नहीं किया। रचना में कहीं-कहीं निम्नवर्गीय स्त्री क्रांतिकारियों का ज़िक्र आता है, परंतु ये पात्र आम तौर पर रचना में उपस्थित नहीं हैं। रचना के इस पहलू को, अथवा निम्नवर्गीय स्त्री-क्रांतिकारी की अनुपस्थिति को हम कैसे समझें? सहृदय पाठक इस अनुपस्थिति को रचना का दोष या अभाव न मान कर रचनात्मकता के संदर्भ में अधूरेपन की विशिष्ट रचनात्मकता के रूप में देखता है। बौद्धिकों अथवा साहित्यकारों में अधूरापन और अनुपस्थिति एक बहुमूल्य संकेत हैं। सहृदय पाठक लेखक का काल्पनिक सहयोगी बनकर उन्हीं रास्तों पर चलता है और उसी सफ़र को तय करता है जहाँ अनुपस्थिति के चिह्न हैं। 'मॉडलिटी' अध्याय में गुहा ने स्त्री-क्रांतिकारी के श्रम से जुड़ी कुछ भाषा संबंधित या फ़िलॉलॅजीकल सम्भावनाओं को जागृत तो किया, लेकिन बाद में त्याग दिया। यूँ भी कहा जा सकता है कि गुहा चंद फ़िलॉलॅजीकल रहस्यों के सामने ठिठक गये और आगे न बढ़ सके।

'मॉडलिटी' अध्याय के आधे-अधूरेपन में अथवा क्रांति में निम्नवर्गीय स्त्रियों के योगदान के विषय में फ़िलॉलॅजी किस तरह की भूमिका निभा सकती है? भाषाशास्त्री ऐसा चश्मा पहन कर रचना को पढ़ता है जिसके लैंस में दुरबीन भी होती है और ख़ुर्दबीन भी। भाषाशास्त्री की निगाह के चौड़े फलक पर अंकित अवधारणाओं के ज़रिये हम मानवीय इतिहास को समझ पाते हैं। मिसाल के तौर पर फ़िलॉलॅजी का दायित्व है राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन का निम्नवर्गीय स्त्रियों के संदर्भ में विश्लेषण किया जाए। पुरुष-स्त्री श्रम-विभाजन के विषय पर गुहा की वर्णन शैली को समझा जाए : गुहा की संकल्पना में हिगेलियन मार्क्सवाद और ग्यारहवीं थीसिस के टकराव को पहचाना जाए। भाषाशास्त्री इतिहास-लेखन की दुरबीन से भाषा का ऐतिहासिक रूप अपने आप नहीं देख सकता। बात तो तभी बनती हैं जब इस चौड़े फलक पर अंकित विशाल अवधारणाएँ भाषा और साहित्य— ऐतिहासिकता में प्रवेश करती हैं। अधिकांशत: इतिहास-लेखन तर्क के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जाता। उसके साथ भाषा का संबंध कुछ ऐसा है जैसे इतिहास-लेखन एक छुपा हुआ यंत्र हो जो अदृश्य होते हुए भी भाषा के विभिन्न अंगों को निर्धारित दिशा में सरका रहा है। अर्थात् इतिहास की घटनाएँ, पात्र, घटना का आरम्भ अथवा निष्कर्ष, तथ्यों की सच्चाई— यह सब लेखक इस तरह देखता है जैसे वह स्वयं ही उनकी आकृति बना रहा है। वास्तव में इतिहास-लेखन का यंत्र इसका संचालन कर रहा है। इतिहासकार का उन्मुक्त सोच इस बात पर निर्भर करता है कि इतिहास-लेखन के यंत्र को पहचाने, पहचान कर उसकी ताक़त को समझे और उसका विरोध करे।

---

[25] गुहा द्वारा नारीवादी इतिहास-लेखन की अनदेखी इस मायने में और अर्थवान हो जाती है क्योंकि जिस समय गुहा अपनी पुस्तक पर काम कर रहे थे ठीक उसी समय कई नारीवादी इतिहासकार कई महत्त्वपूर्ण सवाल उठा रही थीं. मसलन, गेल ओम्वेट ने अपने निबंध में क्रांतियों में ग्रामीण महिलाओं की भागीदारी का मसला 1977 में ही उठा दिया था, जबकि गुहा की पुस्तक 1983 में प्रकाशित हुई थी. देखें, गेल ओम्वेट (1977), 'वुमॅन ऐंड रूरल रिवोल्ट इन इण्डिया', *सोशल साइंटिस्ट,* भाग 1 और 2, खण्ड 6, अंक 61 और 62 : 3-18 तथा 21-41.

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 619

हूल, उलगुलान, फ़ितूर और बवाल के तथ्यों को गुहा फ्रांसीसी क्रांति के आदर्श-ढाँचे पर मापते हैं। उदाहरणत: 1789 के पाँच अक्टूबर के दिन निम्नवर्गीय मछली बेचने वाली फ्रांसीसी औरतों ने बड़ी संख्या में पेरिस से वरसाई तक छह घंटे में पैदल मार्च किया, बारिश की बौछार झेलते हुए। युरोपियन इतिहास में यह 'वुमंस मार्च ऑन वरसाई' कहा जाता है। इस मार्च को युरोपियन इतिहास-लेखन क्रांति के आरम्भ का श्रेय देता है।

इतिहास-लेखन से संघर्ष करने में उन्मुक्त फ़िलॉलॅजी इतिहासकार की हमसफ़र है क्योंकि उसके पास एक सूक्ष्मदर्शक चश्मा है। इस चश्मे से वह पता लगाता है कि इतिहास-लेखन का यंत्र कब और किस तरफ़ नियंत्रण थोप रहा है। गुहा के लेखन में यह यंत्र शब्द-चुनाव, वाक्य-विन्यास, तथ्य-चुनाव, वर्णन-शैली, गद्य-शैली, रूपक, इतिहास, पात्र और दस्तावेज़ों की ख़ामोशी में अपना काम करते हुए देखा जा सकता है। इतिहास-लेखन के ये विभिन्न रूप 'मॉडलिटी' अध्याय में हूल की वर्णन शैली का नियंत्रण करते हैं। 1789 की फ्रांसीसी क्रांति को गुहा मानो लस्सी के लोटे की तरह पी गये हैं और उसे आत्मसात् कर लिया है। फ्रांसीसी क्रांति का हर तथ्य विश्व-क्रांति के इतिहास का आदर्श बन गया। हूल, उलगुलान, फ़ितूर और बवाल के तथ्यों को गुहा फ्रांसीसी क्रांति के आदर्श-ढाँचे पर मापते हैं। उदाहरणत: 1789 के पाँच अक्टूबर के दिन निम्नवर्गीय मछली बेचने वाली फ्रांसीसी औरतों ने बड़ी संख्या में पेरिस से वरसाई तक छह घंटे में पैदल मार्च किया, बारिश की बौछार झेलते हुए। युरोपियन इतिहास में यह 'वुमंस मार्च ऑन वरसाई' कहा जाता है। इस मार्च को युरोपियन इतिहास-लेखन क्रांति के आरम्भ का श्रेय देता है।

निम्नवर्गीय फ्रांसीसी स्त्रियों के पाँच अक्टूबर वाले जुलूस में कुछ ऐसे फ़िलॉलॅजीकल पहलू हैं जिनका प्रभाव गुहा की रचना में दर्ज संथाल हूल की बयान-शैली पर देखा जा सकता है। इन फ़िलॉलॅजीकल पहलुओं में प्रमुख है पेरिस में मछली बेचने वालों की खिचड़ी भाषा जिसे पोइसार्ड कहा जाता है। इसी भाषा में इन औरतों ने जुलूस के दौरान गाने गाये, गालियाँ दीं, मज़ाक किये और व्यंग्य कसा। अक्टूबर के जुलूस का दूसरा भाषा संबंधित पहलू था भोज्य पदार्थों और खाना बनाने के औज़ारों की सांकेतिक भाषा। पेरिस की दुकानों में डबल रोटी की महँगाई, जुलूस का होटल डी विल को लूटना, जुलूस में डबल रोटी को संगीन के ऊपर लगाना, भूख से पीड़ित सामूहिक क्रोध— यह सामूहिक धमकी की संकेत भाषा थी। इसे शब्दों की ज़रूरत नहीं थी, परंतु इसके ज़रिये निम्नवर्गीय औरतों ने अपना संदेश स्पष्ट किया। पाँच अक्टूबर का तीसरा और आख़िरी भाषा संबंधित पहलू था सामूहिकता का रहस्यमय और जादुई मंत्र। ऐसा क्या था जुलूस की भाषा में जिसके कारण निम्नवर्गीय

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 620

औरतें सामूहिक तौर पर छह हज़ार की संगठित, योजना युक्त, सचेत, बहादुर और जागरूक हो गयीं ? छह हज़ार का समूह छह अक्टूबर के दिन साठ हज़ार का जुलूस बन गया। इस सामूहिकता की भाषा और निम्नवर्गीय स्त्रियों का इसमें नेतृत्व— इतिहास-लेखन का ऐसा यंत्र है जिससे इस अध्याय में सामूहिकता के विषय पर गुहा का विश्लेषण अत्यंत प्रभावित दिखाई देता है।

इस अध्याय में गुहा बताते हैं कि एक ब्रिटिश बागान मालिक ने यह आँखों देखा हाल बताया था। 1855 के संथाल हूल के पहले सप्ताह में मोकापाड़ा गाँव में दस आदमियों की टोली के साथ संथाल औरतें भी शामिल थीं जो लूट का सामान ले जा रही थीं। मुर्शिदाबाद के मजिस्ट्रेट के सामने 19 संथाल क़ैदियों की सूची में राधा और हीरा नामक दो औरतों का नाम भी दर्ज किया गया था। जब हूल का अंत होने को आया, तब 1855 के पतझड़ में भी संथाल औरतों का बार-बार ज़िक्र उन सरकारी पत्रों में आता है जिनमें बागियों को पकड़ने, क़ैदी बनाने और न्याय-दण्ड का विवरण दिया गया है (पृ. 130-132)। गुहा का कहना है कि संथाल नेता जूना माँझी की टोली में सिर्फ़ औरतें थीं, जिनमें से दो की उम्र चौदह की थी। सरकारी दस्तावेज़ में उनका जुर्म था किसानों के साथ जाकर टोकरी और थैली में अन्न बटोरना। 1855 के अक्टूबर और नवम्बर के महीनों में 45 संथाल औरतें बीरभूम जेल में क़ैद थीं।

सामूहिकता के अध्ययन में आँकड़े तथ्यों की उत्तमता का प्रमाण बन जाते हैं। अगर समूह हज़ारों में है तो इतिहासकर इस तथ्य को सम्मान देते हैं। भले ही तथ्य की सच्चाई पारदर्शी न हो। फ्रांसीसी इतिहास-लेखन का आदर्श आँकड़ा है छह हज़ार का जुलूस जो साठ हज़ार का समूह बन गया। इस संदर्भ में गुहा निम्नवर्गीय स्त्री समूह को इसी तरह तौलते हैं : 'दस आदमियों की टोली के साथ संथाल औरतें भी शामिल थीं', 'दो औरतों का नाम भी दर्ज़ किया गया था', 'टोली में सिर्फ़ औरतें थीं', '45 संथाल औरतें बीरभूम जेल में क़ैद थीं।' गुहा की शंका है कि संथाल हूल में स्त्री-योगदान के सही आँकड़े ब्रिटिश रिकॉर्ड में छिपाए गये हैं। इस छिपी हुई संख्या को स्पष्ट करने के लिए ब्रिटिश रिकॉर्ड के आधार पर गुहा अनुमान लगाते हैं कि दरअसल हूल की सामूहिकता का यथार्थ सारे निम्नवर्गीय स्त्री-समाज की हूल में भागीदारी था। गुहा के अनुसार : 'वे (क़ैदी संथाल औरतें) अनूठी नहीं थीं, क्योंकि 1855 के संथाल डिस्ट्रिक्ट में *सारे निम्नवर्गीय स्त्री-समाज* (ज़ोर मेरा) पर यह इलजाम लगाया जा सकता था कि वे अन्नपूर्णा का कार्य निभाती हैं और क्रांति की आँख-कान हैं' (पृ. 132)। ज़ाहिर है कि स्पष्ट और प्रामाणिक आँकड़ों से अनुमान की दूरी नापने के पीछे गुहा का इरादा कुछ और है। स्त्री-समूह के आँकड़ों की गड़बड़ में गुहा न केवल तथ्यों पर विवाद कर रहे हैं, बल्कि औपनिवेशिक दस्तावेज़ की भाषा पर भी पाठक का ध्यान केंद्रित कर रहे हैं। गुहा के लिए औपनिवेशिक दस्तावेज़ ब्रिटिश सत्ता का प्रतिरूप है जिसमें निम्नवर्गीय स्त्री-क्रांतिकारी की छवि कुछ इस तरह बनाई जाती है जैसे वह न वीरांगना है और न स्वतंत्रता संग्राम की अग्रदूत।

ब्रिटिश रिकॉर्ड में निम्नवर्गीय स्त्री दुराचारी, हिंसक और ख़तरनाक मुज़रिम की हैसियत से पेश की जाती है। उसका वजूद इस तरह दर्ज़ किया जाता है ताकि उसका क्रांति में योगदान छुप जाए। गुहा के अनुसार बीरभूम के मजिस्ट्रेट की चार्जशीट में निम्नवर्गीय क्रांतिकारी स्त्री यह नहीं साबित कर पाती कि उसका चाल-चलन अच्छा है। उस पर इलज़ाम लगाया जाता है कि वह क्रांतिकारियों की गुप्तचर है, एक साधन है जिसके द्वारा सूरी नगर से क्रांतिकारियों के लिए तम्बाखू, नमक और शराब जैसी ज़रूरी चीज़ें मँगवाई जाती हैं। हालाँकि पूरा संथाल परिवार हूल में भाग ले रहा था, लेकिन सरकार ने उन्हें एक-दूसरे से अलग करके परिवार को तोड़ दिया। निम्नवर्गीय औरतों के लिए कमसिन होने का यह मतलब नहीं था कि वे क्रांति के जोखिम और दण्ड से बच जाएँगी। जब 45 संथाल औरतें बीरभूम की जेल में अपने बच्चों के साथ बीमारी से तड़प रही थीं, तब ब्रिटिश सिविल सर्जन को इन औरतों पर दया आयी। पर मजिस्ट्रेट की तरफ़ से जवाब आया कि बच्चों की मृत्यु का दायित्व

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 621

क्रांतिकारी औरतों पर हैं, ब्रिटिश सरकार पर नहीं। क्रांति में भाग लेकर औरतों ने इस दुख को ख़ुद न्यौता दिया है। सत्ता की भाषा में ये दो शब्द— क्रांति व स्त्री— परस्पर अंतर्विरोधी हैं। अंग्रेज़ों के लिहाज़ से क्रांति में भाग लेने वाली निम्नवर्गीय स्त्री न माँ है न पत्नी। क्रांति में भाग लेने के कारण उसने स्त्री-स्वभाव और स्त्री-धर्म त्याग दिया है। इस कारण सत्ता की भाषा में वह मुजरिम, अपराधी, या दुराचारी के रूप में दर्ज की जाती है। इन इलज़ामों में स्त्री-समूह के असली आँकड़े छिप जाते हैं।

हूल में स्त्रियों की सहभागिता का वास्तविक रूप समझने के लिए 'मॉडलिटी' अध्याय में कुछ शब्द हैं जिनकी अर्थवत्ता आम तौर से शब्दकोश तक सीमित नहीं है। ये शब्द संरचनावादी मार्क्सवाद की शब्दावली अथवा बहसों में रचे-बसे हैं। इन शब्दों में विभिन्न प्रकार की अकादमिक बहसें, लेखकीय आकांक्षाओं और अनुशासनिक क्षेत्र की अकादमिक परम्पराओं से जद्दोजहद निहित है। ऐसा ही अंग्रेज़ी का एक क्रियाशील शब्द है ऐक्सीडिड यानी ज़रूरत से ज़्यादा। ऐसा प्रतीत होता है जैसे इतिहासकार की भूमिका में गुहा के लिए ब्रिटिश रिकॉर्ड में हूल की घटनाओं का वर्णन उस पानी की धारा के तरह है जो घड़े को भरने के बाद छलक रही है। इस छलकाव को गुहा ऐक्सीडिड कहते हैं। गुहा के अनुसार : 'परंतु एक महत्त्वपूर्ण रूप में संथाल हूल की सामूहिकता संथाल शिकार की सामूहिकता को ऐक्सीड कर गयी यानी उसके भी परे चली गयी' (पृ.145)। नाटकीय शैली में यह अध्याय निष्पादित करता है कि निम्नवर्गीय स्त्रियों की क्रांति-श्रम एक तरह का छलकाव है, हद से बाहर जाने की प्रक्रिया है, और इसीलिए वह विभिन्न परम्पराओं के इतिहास-लेखन की सीमा के परे चला जाता है।

गुहा इस छलकाव को समझने का प्रयास करते हैं और मार्क्सवाद की उन बहसों से जुड़ जाते हैं जहाँ मार्क्स अथवा एंगेल्स ने स्त्री-पुरुष के श्रम-विभाजन को सम्बोधित किया था। मार्क्स और एंगेल्स के अनुसार स्त्री-पुरुष के श्रम विभाजन की ऐतिहासिक स्थापना में स्त्री दमन का आरम्भ निहित है। उनकी दलील है कि जब तक इस सेक्शुअल श्रम विभाजन का विनाश नहीं होगा तब तक स्त्रियों को पूरी तरह से स्वतंत्रता नहीं मिलेगी। मार्क्सवाद की इन बहसों से जुड़ कर गुहा हूल की घटनाओं में स्त्री-सहयोग का वास्तविक रूप और परिवर्तनशीलता तलाशते हैं।

> संथाली जाति में शिकार पुरुषों का कार्य था। संथाल परम्परा के अनुसार औरतें भोजन का प्रबंध करतीं थीं और जब पुरुष शिकार से लौटते तब औरतें रीतिपूर्वक उनका स्वागत करतीं और घर की चौखट पर उनके पाँव धोतीं। संथाली स्त्री-पुरुष मिल कर कई तरह के रोज़मर्रा के जीवन के लिए ज़रूरी श्रम करते थे... हूल में भी संथाल स्त्री-पुरुष ने साथ-साथ काम किया। लूट के समय संथाल पुरुषों का कार्य-विभाजन था कि वे भारी भरकम कार्य पूरा करें जैसे दुश्मनों के खेत-खलिहान उजाड़ देना और घरों में तोड़-फोड़ करना। उसी समय हूल की संथाल औरतें लूट इकट्ठा करने का काम करती थीं। निस्संदेह हूल के श्रम-विभाजन का नमूना फ़सल कटने के समय पुरुष-स्त्री के नियमबद्ध श्रम-विभाजन से लिया गया था (पृ. 145)।[26]

अध्याय के इस वाक्यांश की नाटकीय शैली में गुहा का विश्लेषण डगमगाता है। गुहा दुविधा में हैं, और अपनी दुविधा कथाकार के रूप में व्यक्त कर रहे हैं। दुविधा का कारण यह है : किसान-क्रांति का श्रम-विभाजन या तो संथाल शिकार के श्रम-विभाजन की तरह है और या उससे अलग है? संबंध भिन्नता का है या समानता का? वाक्यांश के आरम्भ में गुहा ने इस संबंध को ऐक्सीडिड शब्द से व्यक्त किया है, परंतु वाक्यांश के अंत में वे इस संबंध की परिभाषा देते हैं कि क्रांति का कार्य-

---

[26] गुहा लोक-कथाओं को प्राथमिक स्रोत नहीं मानते। लेकिन इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि उन्होंने नार्वे के मिशनरी स्क्रेसफ्रड के मानवशास्त्रीय विवरण- *मेअर हप्रमक्रा रीक्र कथा* (संथालों की परम्पराओं तथा संस्थाओं का विवरण) का व्यापक इस्तेमाल किया है. उक्त पुस्तक का अनुवाद वैद्यनाथ हंसदा ने 1953 में किया था. गुहा ने इस पुस्तक का उद्धरण ए. मित्र (सम्पा.) (1953), *डिस्ट्रिक्ट हैंडबुक्स,* बांकुड़ा, कलकत्ता. से लिया है. नित्या राव की पाद-टिप्पणी के मुताबिक़ *मेअर हप्रमक्रा रीक्र कथा* से संथालों की प्रथाओं के बारे में मौलिक जानकारी मिलती हैं. देखें, नित्या राव (2008), *गुड वुमॅन डू नॉट इनहेरिट लैण्ड : पॉलिटिक्स ऑफ़ लैण्ड ऐंड जेण्डर इन इण्डिया,* सोशल साइंस प्रेस तथा ऑरिएंट ब्लैक स्वान : 251.

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 622

विभाजन मानक या नियमबद्ध श्रम-विभाजन से लिया गया है। छलकाव शब्द इस दुविधा का संकेत है। डगमगाने का यह नाटकीय अंदाज़ गुहा यह कहते हुए दुबारा दिखाते हैं : 'बागी संथालों ने हूल को सामूहिक श्रम की संकेत-योजना में *उसी क्रम में* (ज़ोर मेरा) रखा जिस क्रम में संथाल शिकार और मछली पकड़ने के श्रम को डालते थे (पृ. 150)।' इस वाक्य में दोनों सम्भावनाएँ हैं : या तो क्रांति-श्रम परम्पराग्रस्त श्रम-योजना के क्रम जैसा ही है : या वैकल्पिक रूप में क्रांति-श्रम इससे निकल कर, छलक कर कुछ और बन गया है। ज़ाहिर है कि गुहा के लिए किसान-क्रांति करने का इतिहास है, अथवा श्रम-केंद्रित है, इसी कारण भाषाशास्त्री के दृष्टिकोण से यह उचित है कि गुहा छलकाव के समानार्थक अंग्रेज़ी शब्द ऐक्सीडिड यानी ऐक्सीड के क्रिया रूप का उपयोग करते हैं, क्योंकि क्रियाशील शब्द करने पर ज़ोर देता है। ऐक्सेस जैसे संज्ञा रूप में छलकाव का शब्द अमूर्त गुण बन सकता था। चूँकि गुहा सामाजिक परिवर्तन के विशेषज्ञ हैं इसलिए उनकी जिज्ञासा इस बिंदु पर अटकी हुई है कि जब किसान-स्त्री का श्रम परम्परागत कार्य-क्षेत्र से निकलकर क्रांति-क्षेत्र में आता है तब किस तरह का सामाजिक रूपांतरण हो सकता है?

इतिहासकार के लिए क्रांति के समय के रूपातंरण— उसके कारण, उसका फैलाव और स्थायित्व अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। एक दार्शनिक और मार्क्सवादी होने के नाते गुहा रूपातंरण की रूपात्मकता को एक ऐसी जिज्ञासा बना देते हैं जिसमें अनुरागपूर्ण कौतूहल भी है और आवेग भी है। यही कारण है कि हूल के श्रम-विभाजन में स्त्रियों के कार्यों का चित्रण करते हुए गुहा में मार्क्सवाद की दो विचारधाराओं का टकराव होता है : एक ओर है गुहा का हिगेलियन मार्क्सवाद, और दूसरी ओर है गुहा का दूसरा रुझान जो उन्हें ग्यारहवीं थीसिस से हासिल हुआ है। हिगेलियन दर्शन से प्रभावित मार्क्सवाद परिवर्तन को चेतना में ढूँढ़ता है। फलतः गुहा की हिगेलियन प्रवृत्ति रचना में वहाँ-वहाँ दिखती है जहाँ-जहाँ वे स्त्री-क्रांतिकारी के चेतना-केंद्रित कार्य बयान कर रहे हैं। गुहा के अनुसार स्त्री-क्रांतिकारी का चेतना-केंद्रित कार्य वह है जिनमें वह हूल में पुरुषों के साथ-साथ काम करती हैं (पृ. 145), ब्रिटिश सिपाहियों की गोली से घायल हो जाती हैं (पृ. 146) और ख़तरनाक कार्यों की ज़िम्मेदारी स्वीकार करती हैं। गुहा इसे सक्रिय सहायता कहते हैं। स्त्री-क्रांतिकारी की चेतना की पूर्व-शर्त है कि वह घर की चौखट से निकले और पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिला कर क्रांति का कार्य करे। चेतना-केंद्रित हिगेलियन दृष्टिकोण की समस्या यह है कि स्त्री-कार्यों और चेतना के बीच एक सरल और सीधा संबंध बनाना असम्भव है क्योंकि चेतना के विषय में अनुमान लगाया जा सकता है परंतु चेतना का स्थायी प्रमाण नहीं प्राप्त होता। यही नहीं, समस्या यह भी है कि हिगेलियन विचारधारा में ढला हुआ स्त्री-इतिहास राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन में घुल-मिल जाता है, कुछ इस तरह कि गुहा किसान-क्रांति की पूर्ति बीसवीं सदी के स्वतंत्रता संग्राम में देखने लगते हैं। राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन यह भ्रम फैलाता है कि स्त्री-इतिहास का ऐतिहासिक प्रश्न केवल यही है कि परदे की प्रथा भारत में कब आरम्भ हुई और सुधार कब हुआ। गुहा बयान करते हैं कि 'जब संथाल पुरुष शिकार से वापस लौटे तब संथाल औरतें उनका रीतिपूर्वक स्वागत करती हैं और द्वार प्रवेश के पहले उनके पैर धोती हैं (पृ. 145)।' यद्यपि गुहा मिशनरी विवरण ही दुहरा रहे हैं फिर भी गुहा की बयान शैली में राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन का प्रभाव दिखता है क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे हूल के पहले संथाल स्त्रियाँ मध्यवर्गीय स्त्रियों की तरह घर के कार्य करती थीं और पुरुष बाहर के कार्य। संथाल इतिहास में स्त्रियाँ परदे में नहीं थीं। निम्नवर्गीय स्त्रियों का इतिहास और हिंदू कुलीन परिवारों का अथवा मुसलमानों के अशराफ़ ख़ानदानों का इतिहास परस्परव्यापी तो है पर सदृश्य नहीं।

चेतना-केंद्रित निम्नवर्गीय स्त्री-इतिहास के बीच और गुहा के मार्क्सवाद की विभिन्न विचारधाराओं में एक सूक्ष्म अंतर है। यह विचारधारा ग्यारहवीं थीसिस से प्रेरणा लेकर चेतना पर ज़ोर नहीं देती बल्कि नवीन प्रैक्सिस की कल्पना करती है। गुहा को इस नवीन प्रैक्सिस का सूत्र मिलता है ब्रिटिश रिकॉर्ड के इस

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 623

कथन में कि क्रांति में निम्नवर्गीय स्त्रियाँ क्रांति की आँख और कान थीं (पृ. 132)। ये कार्य जोखिम भरे थे और उनकी पूर्ति पर क्रांति की विजय-पराजय निर्भर करती थी। सबसे प्रासंगिक बात यह है कि यह कार्य भाषा और संकेत से संबंधित थे। क्रांति की संदेश तकनीक, संग्रहण-शक्ति और क्रांतिकारियों का जीना-मरना स्त्रियों के इन दोनों कार्यों पर निर्भर करता था। गुहा का यह प्रस्ताव है कि क्रांति के आँख और कान बन कर निम्नवर्गीय स्त्रियों ने एक नवीन प्रैक्सिस का सृजन किया। इस तर्क की बुनियाद इस बात में है कि क्रांति का गुप्तचर बनना, ब्रिटिश सेना का आँखों देखा हाल बताना, छिप कर सुनना— ये सभी कार्य ग़ैरमामूली थे क्योंकि इसमें समझ-बूझ, साहस, सतर्कता और विवेकशीलता की आवश्यकता थी। निम्नवर्गीय स्त्रियों के संदेश-कार्यों की महत्ता इस कारण भी है कि भाषा संदेश का एक रूप है। उच्चवर्गीय समाज की नज़र में संदेश ले जाने वाली औरतें अनपढ़ भले ही हों, परंतु वे संकेत योजना समझने में निपुण थीं और भाषा के सांकेतिक आयाम की विद्या में पारंगत थीं।

गुहा की प्रैक्सिस-केंद्रित विचारधारा की प्रमुख विशेषता यह है कि इतिहासकार कई तरह की चिंताओं से मुक्त हो जाता है। उसे निम्नवर्गीय स्त्रियों के क्रांति में सहभागिता के सही आँकड़े दिखाई देते हैं क्योंकि अगर स्त्रियाँ क्रांति की आँख और कान थीं तो निस्संदेह उनका योगदान क्रांति की हर घटना में ज़रूरी था। औपनिवेशिक दस्तावेज़ों में गुहा पढ़ते हैं कि सरकारी अफ़सरों को शक तो था, पर स्त्री-सहभागिता का पूरा विवरण देना उनके लिए नामुमकिन था। प्रैक्सिस केंद्रित विचारधारा अपनाते हुए गुहा इस चिंता से भी मुक्त हो जाते हैं कि चेतना का नया हिगेलियन चरण तभी आएगा जब पुरुष-स्त्री श्रम-विभाजन टूटेगा। गुहा के बयान से यह सम्भावना उत्पन्न होती है कि अक्सर श्रम-विभाजन टूटने की रीति कुछ इस प्रकार से होती है : निम्नवर्गीय स्त्रियों के रोज़मर्रा के कार्य यानी घर और खेत के कार्य-क्षेत्र से निकल कर स्त्री क्रांति के बृहत्तर क्षेत्र में जाती है। यह कार्य है संदेश पहुँचाना, ख़बर लाना, छिप के सुनना, कुछ ऐसे सुनना कि सरकार और साहूकार को लगे कि निम्नवर्गीय स्त्री के कान बंद हैं या बात उसकी समझ के बाहर है, तमाशबीन बनना और आँखों देखा हाल क्रांतिकारियों तक पहुँचाना। इन कार्यों में कब और किस प्रकार निम्नवर्गीय स्त्रियों की बुद्धि अथवा सोच राजनीतिकृत हो जाती है, कब और कहाँ हूल में श्रम-विभाजन इस कार्य-पालन में एक नयी प्रैक्सिस बन जाता है, इसे नापने की चिंता से गुहा मुक्त हो जाते हैं। मार्क्सवादी इतिहासकार की चिंता का अंतिम कारण है : क्या क्रांति की भाषा अतीत से माँगी हुई उधार की भाषा में अभिव्यक्त हो रही है? गुहा की महत्त्वाकांक्षा थी कि फ्रांसीसी निम्नवर्गीय स्त्रियों की पोइनसार्ड की भाषा की भाँति उन्हें किसान आंदोलन में सभी स्त्रियों की भाषा मिले।

1875 में संदेश की दो तकनीकों का टकराव हुआ था : ब्रिटिश कम्पनी बहादुर का टेलिग्राफ़ सिस्टम और पत्र-व्यवहार एक ओर था : दूसरी तरफ़ कच्चे खाने में बनाई जाने वाली चपाती या रोटी के ज़रिये होने वाला संचार। परंतु संचार के रूप में चपाती का बाँटना रोज़मर्रा के सामान्य समय को क्रांति का समय बनाने का संकेत था (1875 का चपाती-संचार)।[27] स्त्री-क्रांति के दोनों पहलू, अन्नपूर्णा होने का पहलू और क्रांति के आँख-कान का पहलू आपस में जुड़ जाते हैं। आज तक यह

---

[27] ब्रिटिश मजिस्ट्रेट मार्क थॉर्नहिल फ़रवरी, 1857 में मथुरा में थे. यहाँ उन्होंने सिपाहियों और चौकीदारों से पहली बार चपातियों के रूप में भेजे जा रहे संदेशों के बारे में सुना. कुछ विवरणों में रोटियों के ढेर में कमल के फूल होने की बात भी की जाती है (ब्रिटिश ऑफ़िसर रिचर्ड बार्टर द्वारा दर्ज). इस संदर्भ में ब्रिटिश अभिलेखागार तथा उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश के लोगों में प्रचलित विश्वास का पाठांतर इतिहासकारों और भाषाशास्त्रियों के बीच बहस का एक महत्त्वपूर्ण विषय रहा है. इसका कारण यह है कि 1857 का आख्यान एक बहुत लम्बे समय से सघन और संघटित आख्यान रहा है. आख्यान की इस प्रवृत्ति के कारण ही हमें इस घटना से जुड़ी औपनिवेशिक और देसी व्याख्याओं का अंतर सही ढंग से समझ नहीं आता. ग़ौरतलब है कि जनमानस में इस घटना की व्याख्या विद्रोह के बाद भी चलती रही थी.

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 624

नहीं जाना जा सका है कि 1857 में संदेश के रूप में चपाती का प्रचार किसने शुरू किया, यद्यपि यह तो निश्चित है कि चपाती-संदेश आधुनिक उत्तर-प्रदेश से शुरू होकर दूर-दूर तक फैला, बागी सिपाहियों, किसानों और पूरे गाँव और ज़िले में। चपाती-संचार को एक ब्लैंक साईन या कोरा संकेत कहा गया है।[28] यह एक सृजनशील और भोजन संबंधित भाषा का उत्तम उदाहरण है। पकड़े भी गये तो चपाती के भीतर कोई गुप्त पत्र नहीं मिल सकता था, क्योंकि संदेश का रूप यानी अन्न की रोटी ही उसका सार था। हो सकता है कि चपाती-संचार का सृजन उत्तर-प्रदेश की किसी औरत ने किया हो जिसका नाम संथाल हूल की औरतों की तरह इतिहास में नहीं मिलता, पर जिसे हम किसान-क्रांति की अज्ञात स्त्री-सिपाही की पदवी दे सकते हैं। रानी-बेगम केंद्रित इतिहास में अथवा मध्यवर्गीय स्त्री-इतिहास में हम कई नाम जानते हैं। परंतु निम्नवर्गीय संदर्भ की एक पहचान यह है कि इतिहास के पन्नों पर उसकी रचना करने वाली राधा-हीरा जैसी आदिवासी स्त्रियों का नामोनिशान ही नहीं मिलता। अगर एक-दो नाम मिलते भी हैं तो औपनिवेशिक दस्तावेज़ों के ज़रिये। इस लुप्त इतिहास के संदर्भ में *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* की अभिप्रायपूर्ण विफलता प्रासांगिक है।

भूगोल के कण इतिहास की किरण में : आधे-अधूरे (2)

एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स के अंतिम खण्ड में, जिसका शीर्षक है 'टेरीटोरियलिटी', गुहा एक ऐसा भाषा-संबंधित संघर्ष नाटकीय रूप से प्रस्तुत करते हैं जिसमें प्रयास का साहस भी है और वह आज के समाज-चिंतन के संदर्भ में प्रासंगिक भी है। दरअसल, यह अभिप्रायपूर्ण विफलता का दूसरा उदाहरण है। गुहा के सामने सवाल यह था कि भारतीय भाषाओं में जो शब्द देश के लिए उपयोग किये जाते है, उन्हें कैसे खोला जाए जिससे वह शब्द राष्ट्र का अनुवाद मात्र न हो और उच्चवर्गीय राष्ट्रवादी विमर्श द्वारा न हड़प लिया जाए, बल्कि निम्नवर्गीय किसान-क्रांति के इतिहास में नये अर्थों का समावेश करे। नियमानुसार गुहा मार्क्सवाद की एक बहस से आरम्भ करते हैं जिसमें किसान-लोकलिज़म या स्थानीयता को क्रांति का अभिशाप माना गया है। अध्याय का पहला प्रश्न है: 'क्रांति कहाँ तक फैल सकती है ? ऐसी कोई स्वाभाविक सीमा है जिसके पार किसान-क्रांति नहीं जा पाती, चाहे वह कितनी ही रफ़्तार से फैले और उसके संचार-साधन कितने भी प्रबल हों ? (पृ. 278)।'

गुहा ने वही विश्लेषण प्रणाली अपनाई जिससे उन्हें 'निगेशन' अध्याय में बहुत मदद मिली थी। गुहा ने संरचनावाद द्वारा प्रदत्त सनक्रमिकता नीति अपनाई और भारत के भिन्न-भिन्न समाजों से यह समझना चाहा कि गाँव, ज़िला अथवा गोत्र व जाति-संबंधित स्थानीयता को किन शब्दों और संकेत-योजना में समझा जाता है। गुहा की मान्यता बनी कि किसान-स्थानीयता, जो मार्क्सवाद में किसान-क्रांति का अभिशाप माना जाता है, इन्हीं संकेत योजनाओं से उत्पन्न हुई होगी। गुहा जानते थे कि इस कथन के लिए औपनिवेशिक दस्तावेज़ों ने अनगिनत प्रमाण तैयार किये कि गाँव, प्रांत और शहर में भारतीय जनता सिर्फ़ अपने जातभाई और गाँव के भाई-बंधु को देश-निवासी समझती हैं और स्थानीयता के मापदण्ड से दूसरों को परदेसी, दिकू, यवन, म्लेच्छ मानती हैं। गुहा इसे औपनिवेशिक दस्तावेज़ों में निगिच सूचीकरण का पूर्वग्रह कहते हैं (पृ. 312)। गुहा के मुताबिक़ किसान-क्रांति के दौरान एक नवीन भूगोल की कल्पना की जाती है जिसे औपनिवेशिक दस्तावेज़ का संकीर्ण पैमाना नकारता है। इस पैमाने के अनुसार किसान-क्रांति केवल वहीं तक जा सकती है जहाँ तक किसान की 'प्राचीन निष्ठा' गाँव और ज़िले के लोगों के साथ है (पृ. 315)।

इसी समस्या की खोज में गुहा ने 1857 की कई लड़ाइयों का अध्ययन किया। उनका यह अंदाज़ा

---

[28] चपाती को एक रिक्त या कोरा चिह्न मानने की धारणा के लिए देखें, किम ए. वैगनर (2010), *द ग्रेट फ़ीयर ऑफ़ 1857 : रूमर्स, क्रांसपिरेसीज़ ऐंड द मेकिंग ऑफ़ द इण्डियन अपराइजिंग,* पीटर लैंग, ऑक्सफ़र्ड.

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 625

सत्ता की भाषा में ये दो शब्द— क्रांति व स्त्री— परस्पर अंतर्विरोधी हैं। अंग्रेज़ों के लिहाज़ से क्रांति में भाग लेने वाली निम्नवर्गीय स्त्री न माँ है न पत्नी। क्रांति में भाग लेने के कारण उसने स्त्री-स्वभाव और स्त्री-धर्म त्याग दिया है। इस कारण सत्ता की भाषा में वह मुजरिम, अपराधी, या दुराचारी के रूप में दर्ज की जाती है। इन इलज़ामों में स्त्री-समूह के असली आँकड़े छिप जाते हैं।

सही था कि 1857 की घटनाओं में देश और स्थानीयता का एक नया, प्रगतिशील और प्रभावशाली नमूना तैयार हुआ था। गुहा इन घटनाओं को एक ख़ूबसूरत तुलना से गुज़ारते हैं। वे कहते हैं कि उत्तर और मध्य भारत से आने वाले लोकल डिस्पैच और रपटों में गाँव, परगना, मौजा के स्थान-नाम भरे हुए हैं। इन छोटी-बड़ी जगहों के नाम गुहा के कानों को मीठे लगते हैं। वे इसकी तुलना करते हैं जैसे भूगोल के कण इतिहास की सूर्य-किरण से प्रज्वलित हो गये हों (पृ. 305-6)। गुहा की यह तुलना विचारणीय है। औपनिवेशिक भूगोल ने हिंदुस्तान का एक नक्शा बनाया था जिसके तहत पराजित जनता स्थानीयता के संकीर्ण दृष्टिकोण के कारण एकता का महत्त्व नहीं समझ पाई। मार्क्सवाद की बहसों में निम्नवर्गीय क्रांतिकारी स्थानीयता के कारण पराजित होते दिखाए गये हैं। गुहा ने किसान क्रांति की स्थान-संबंधित शब्दावली व क्रांति की व्यापकता के भिन्न-भिन्न नमूनों में एक ऐसी सूर्य-किरण देखी जो क्षण भर के लिए भूगोल-ज्ञान को रोशनी में ले आयी।

यह क्रांति-इतिहास गुहा के लिए सूर्य की किरण भी था और वह प्रैक्सिस भी जिससे एक नया ज्ञान-क्षेत्र उत्पन्न हो सकता है। यह *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* का वह पहलू है जिसे इस लेख में मार्क्स की ग्यारहवीं थीसिस के साथ जोड़ा गया है। इस मार्क्सवादी विचारधारा के बहाव में गुहा यह सम्भावना प्रस्तुत करते हैं कि निम्नवर्गीय विद्रोह की स्थानीयता पर नये सिरे से सोचा जाए। परंतु मार्क्सवाद की दूसरी विचारधारा जो दार्शनिक हिगेल से प्रभावित है, इस सम्भावना को विकसित होने से रोक देती है। यह हिगेलियन विचारधारा *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* के अंतिम अध्याय के अंत में व्यक्त होती है। गुहा कहते हैं कि 1857 की किसान-क्रांति लाभदायक तो थी, परंतु उस क्रांति की पराजय का कारण किसानों की संकीर्ण सोच और स्थानीयता में था। हिगेलियन मार्क्सवादी की तरह गुहा इतिहास को सीढ़ियों में बाँट देते हैं। गुहा के अनुसार इस स्थानीयता से आक्रांत क्रांति के बाद बीसवीं सदी के वे राष्ट्रवादी आंदोलन आये जो व्यापक फलक के थे। इनमें स्थानीयता की जगह एक नये भूगोल की कल्पना हुई जिसे राष्ट्र के नाम से सम्बोधित किया गया। क्या यह सम्भव है कि 1857 की नये सोच में कुछ ऐसी स्थान-संबंधित कल्पनाएँ रेखांकित की जा सकती हैं जो बीसवीं सदी के स्वतंत्रता संग्राम में विलुप्त हो गयीं? गुहा

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 626

इसीलिए प्रशंसा के योग्य हैं, क्योंकि अपनी नाटकीय शैली में उन्होंने दिखाया है कि भूगोल को क्रांति के इतिहास की किरणों से प्रज्वलित करना होगा। इतिहास-लेखन का यह कार्य तभी सार्थक होगा जब इतिहासकार उन्मुक्त रूप से ऐसे निरुक्तशास्त्र का निर्माण करेगा जिसके भीतर देश, देस, देसम, दिकू, यवन शब्दों के नये अर्थ-विस्फोट हो सकेंगे।

निम्नवर्गीय इतिहास में उन्मुक्त फ़िलॉलॅजी के मूल सिद्धांत

निम्नवर्गीय संदर्भ में भाषा अध्ययन के विषय में *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* से कुछ ऐसे तर्क निकलते हैं और एक तरह की विचार-प्रणाली उभरती है जिस पर ग़ौर किया जाना चाहिए :

1. भाषा संस्कृति के विकास का मापदण्ड अवश्य है पर गुहा के लिए भाषा निम्नवर्गों के दमन का मापदण्ड भी है। इस रूप में भाषा उच्चवर्गीय व्यवस्थित समाज के दमन संबंधी कार्यों का प्रमुख अंग है। गुहा के अनुसार भाषा की दमन शक्तियाँ नियमों में अभिव्यक्त होती हैं- सम्बोधन के नियम, त्योहार में नियम उल्लघंन के नियम, मतभेद अथवा सहमति व्यक्त करने के लिए दलित वर्गों के लिए नियम, निम्नवर्गों के श्रम-संबंधित कार्यों का पालन करते हुए उनकी बोली और भाव-भंगिमा के नियम।

2. क्या भाषा निम्नवर्गीय संदर्भ में केवल नियम है? गुहा भाषा को मात्र नियम-योजना मानने के लिए तैयार नहीं हैं। नियम-केंद्रित भाषा-अध्ययन मान कर चलता है कि भाषा की भूमिका दर्पण की है। लेकिन, गुहा के लिए भाषा दर्पण न हो कर मध्यस्थता है।

3. *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* दो आकृतियाँ बनाती है। एक आकृति में उच्चवर्गीय समाज निम्नवर्गीय समाज की बोली, संदेश, गीत, सामान्य जीवन की बातचीत पर निरतंर कान लगा कर सुनने का प्रयत्न करता है। दूसरी आकृति है निम्नवर्गों की, जिनका संबंध भाषा से ऐसा नहीं है कि वह असहाय और बेबस है और चुपचाप सहना और उच्चवर्गीय भाषा के नियम पालन करना ही उसके लिए सम्भव है। गुहा के लिए निम्नवर्गों के भाषा-संबंधित कार्य साधारण समय व सामान्य जीवन में एक प्रकार के हैं, अथवा असाधारण समय व क्रांति के दिनों में दूसरे प्रकार के हैं। दोनों समयों में निम्नवर्गों का भाषा से संबंध सृजनशील, अनुकूलनीय, समझदार और विवेकवान है। निम्नवर्गों को उच्चवर्गों की शिक्षित भाषा के नियम सीखने पड़ते हैं, भाषा के नियम-उल्लंघन पर दण्ड से बचने के लिए सजग रहना पड़ता है। साथ ही साथ शोषण से समझौता करने के लिए निम्नवर्गों को भाषा-नियमों में हेरफेर करने की सम्भावना को भी निरंतर ढूँढ़ना पड़ता है।

4. गुहा के अनुसार निम्नवर्गों के भाषा-संबंध में क्रांति का यही महत्त्व है। विद्रोह के समय की असाधारणता का एक यह भी पहलू है कि निम्नवर्गों की सम्पूर्ण समझ उच्चवर्गीय भाषा के बारे में व्यक्त होती है। गुहा इसे दो शैलियों में देखते हैं : नकारात्मकता की शैली में और विनियोग की शैली में। साथ ही साथ निम्नवर्गों की अपनी भाषा की सृजनशीलता व्यक्त होती है गुप्त संदेश, अफ़वाह, क्रांति-गीत और नारों में। इन सब में रूपक, संगीत, शरीर, नाच आदि का प्रयोग निम्नवर्गीय सृजनशीलता का साक्षी है।

5. *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* की हिगेलियन विचारधारा का प्रभाव हम वहाँ देखते है जहाँ भाषा को चेतना का मापदण्ड बनाया जाता है। हिगेलियन विचारधारा का भ्रम यह है कि ऐसा सरल उपाय नहीं है जिससे निम्नवर्गों की चेतना को हम भाषा के माध्यम से जाँच-पड़ताल कर सकते हैं। *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* की दूसरी और विपरीत विचारधारा है जो ग्यारहवीं थीसिस से प्रेरणा लेती है और जो निम्नवर्गीय संदर्भ में भाषा को चेतना का प्रमाण न मानकर विद्रोह की सृजनशीलता का आवश्यक अंग और नवीन सोच की प्रैक्सिस मानती है। भाषा में व्युत्पत्ति के संबंध में गुहा की सोच में हिगेलियन अथवा ग्यारहवीं थीसिस के बीच द्वंद्व सामने आता है। संथाल जाति की भाषा में दिकू शब्द का अर्थ

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 627

बाहर से आने वाला व्यक्ति। गुहा के अनुसार औपनिवेशिक युग में दिक्कू शब्द के ऐतिहासिक रूप में कुछ ऐसे अर्थ जुड़ गये जिससे इस शब्द से संथाली जाति का संकेत उस उच्चवर्गीय दमन समाज की ओर था जो सरकार, साहूकार व ज़मींदार के रूप में उनपर अत्याचार करते थे। गुहा की बौद्धिक समस्या यह है कि इस शब्द में हिंदी की वाक्य शैली का आगमन कब और क्यों हुआ। दिक्कू शब्द से उत्पन्न यह वाक्यांश 'दिक-दिक करने वाला' उत्पन्न हुआ। संथालों का साहूकार और ज़मींदार और उनके अनुचरों की हिंदी भाषा से सम्पर्क कैसे और क्यों हुआ? भाषा के इस रहस्य की प्रासंगिकता हम इस बात से देख सकते हैं कि समकालीन उत्तर-भारत में आज भी यह वाक्यांश सामान्य जीवन में प्रयोग किया जाता है और 'झिक-झिक करने वाला' के रूप में सामान्य बोली का एक अंग है। अधिकतर इसका प्रयोग निम्नवर्गों में होता है। वे उच्चवर्गीय मालिक या मालकिन की निंदा के लिए इसका इस्तेमाल करते हैं जिनकी डाँट-फटकार से तंग आ कर नौकरी छोड़ दी जाती है। उच्चवर्गीय भाषा में भी इसका प्रयोग होता है। इस व्युत्पत्ति से हम यह सीखते हैं कि भाषा दमन का प्रतिबिम्ब नहीं है मध्यस्थता है। शब्दों के बदलते अर्थ व ऐतिहासिक विकास में निम्नवर्गीय भाषा प्रयोग उच्चवर्गीय भाषा-प्रणाली में सम्मिलित हो सकने की सम्भावना रखता है।

6. *एलिमेंटरी आस्पेक्ट्स* के प्रभावशाली निष्कर्षों को इस लेख में उन्मुक्त फ़िलॉलॅजी का नाम दिया गया है। निम्नवर्गीय संदर्भ में भाषा अध्ययन लोक-कथा और लोक-गीत में निम्नवर्गों की भाषा और साहित्य को ढूँढ कर किया जा सकता है। पर गुहा ने यह मार्ग नहीं अपनाया। उन्होंने दूसरा मार्ग अपनाया जिसे मैंने गुहा की रचनाओं में अनुशासनिक ज्ञान-क्षेत्र से असंतुष्टी की शृंखला कहा है। पर यह असंतोष निराशा का चिह्न नहीं है। इसमें एक अकादमिक रास्ते की खोज है जो मार्क्सवाद की बहसों के साथ-साथ भारतीय दर्शनशास्त्र व भाषाशास्त्र के अध्ययन से भी जुड़ा हुआ है।

7. इस भाषा-संबंधित सोच को जोड़ कर एक एकीकृत व संगठित योजना बनाना उचित नहीं होगा। इस फ़िलॉलॅजी की उपस्थिति ही योजना-विरुद्ध या ऐण्टी-सिस्टम है। उन्मुक्त फ़िलॉलॅजी की उन्मुक्तता क्रांति-इतिहास के पात्रों किसान विद्रोहियों, इतिहासकारों और पाठकीय दावेदारियों के परस्पर संबंध पर निर्भर है। उन्मुक्त फ़िलॉलॅजी के दोनों भाग अस्थिर हैं। अगर हम इस चाह और सम्भावना को स्थिर रूप दे कर इसकी आज़ाद ख़याली के स्रोत बंद कर देंगे तो यह उन्मुक्तता महज़ नारेबाज़ी में बदल जाएगी। उन्मुक्त फ़िलॉलॅजी इतिहास-लेखन व साहित्य-ऐतिहासिकता की छाया और प्रतिरूप है। वह इसी दोहरेपन में जीवित रहती है।

संदर्भ

ऑस्कर लेवी (2006)(सम्पा.), *फ़्रेड्रिख़ नीत्शे, होमर ऐंड क्लासिकल फ़िलॉलॅजी*, अनुवाद : जे.एम. केनेडी. www.gutenberg.org/files. पर उपलब्ध.

ए. मित्र (1953)(सम्पा.), *डिस्ट्रिक्ट हैंडबुक्स,* बाँकुड़ा, कलकत्ता.

एडवर्ड सईद (2000), 'सेकुलर क्रिटिसिज़म', मुस्तफ़ा बयूमी तथा एंड्रयू रूबिन (सम्पा.), *एडवर्ड सईद रीडर*, विंटेज, न्युयॉर्क : 218-242.

कार्ल मार्क्स (1845), *इलेविंथ थीसिस ऑन फ़्यूरबाख़*, अनु. : डब्ल्यू लॉ, लुडविग फ़्यूरबाख़ का परिशिष्ट तथा *द ऐंड ऑफ़ क्लासिक्ल जर्मन फ़िलॉसफ़ी (1888), मार्क्स-एंगेल्स सेलेक्टेड वर्क्स* (1969), खण्ड 1, प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मास्को : 13-15 (पुनर्मुद्रित).

कार्ल मार्क्स (1937), *द ऐटींथ ब्रूमेर ऑफ़ लुई बोनापार्ट (1851-1952),* (अनु.), प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मास्को.

किम ए. वैगनर (2010), *द ग्रेट फ़ीयर ऑफ़ 1857 : रूमर्स, कांसपिरेसीज़ ऐंड द मेकिंग ऑफ़ द इण्डियन अपराइजिंग,* पीटर लैंग, ऑक्सफ़र्ड.

10_rashmi_Layout 1 10/17/2014 4:09 PM Page 628

गायत्री चक्रवर्ती स्पिवाक (1988), 'डिकंस्ट्रक्टिंग हिस्टोरिओग्राफ़ी', रणजीत गुहा तथा गायत्री चक्रवर्ती स्पिवाक (सम्पा.), *सेलेक्टिड सबाल्टर्न स्टडीज़,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

गायत्री चक्रवर्ती स्पिवाक (2014), 'पोस्ट-कोलोनियल थियरी ऐंड द स्पेक्टर ऑफ़ कैपिटल', *केम्ब्रिज रिव्यू ऑफ़ इण्टरनेशनल अफ़ेयर्स ,* खण्ड 27, अंक 1.

गेल ओम्वेट (1977), 'वुमॅन ऐंड रूरल रिवोल्ट इन इण्डिया', *सोशल साइंटिस्ट,* भाग 1 और 2, खण्ड 6, अंक 61 और 62.

डब्ल्यू.जे.टी मिचिल से एसब्योनग्रोन्सटैड तथा वाईविंड वैगनेसफ्रॉम का साक्षात्कार, *इमेज(&)नैरेटिव,* 'बैटल्स अराउंड इमेजिज़ : आइकोनोक्लाज़म ऐंड बियॉन्ड', नवम्बर 2006.

ज़ाक देरिदा (1999), ' मार्क्स ऐंड संस', माइकेल स्प्रिंकलर (सम्पा.), *घोस्टली डिमारकेशंस : अ सिम्पोज़ियम ऑन ज़ाक देरिदाज़ स्पेक्टर्स ऑफ़ मार्क्स ,* वर्सो, लंदन.

दीपेश चक्रवर्ती (2013),'सबाल्टर्न स्टडीज़ इन रिट्रोस्पेक्ट ऐंड रेमिनिसेंसिज़', *इकॅनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली ,* खण्ड XiVII, अंक 21, मई 25.

नाथूराम प्रेमी (सम्पा.)(1957), *बनारसी दास, अर्धकथानक ,* ग्रंथ रत्नाकर, बम्बई.

नित्या राव (2008), *गुड वुमॅन डू नॉट इनहेरिट लैण्ड : पॉलिटिक्स ऑफ़ लैण्ड ऐंड जेण्डर इन इण्डिया,* सोशल साइंस प्रेस तथा ऑरिएंट ब्लैक स्वान, नयी दिल्ली.

निवेदिता मेनन, 'थीसिस ऑन फ़्यूरबाख़, वूडी ऐलन और नंदीग्राम', *क़ाफ़िला,* 25 नवम्बर, 2007.

परिता मुक्ता (1998), *अपहोल्डिंग द कॉमन लाइफ़ : द कम्युनिटी ऑफ़ मीरांबाई* (जेण्डर स्टडीज़), ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

पार्थ चटर्जी (सम्पा.) (2009), *रणजीत गुहा : द स्माल वॉयस ऑफ़ हिस्ट्री: कलेक्टिड एसेज़ ,* पर्मानेंट ब्लैक, नयी दिल्ली : 1-17.

रणजीत गुहा (1983), *ऐलिमेंटरी आस्पेक्ट्स ऑफ़ पैज़ेंट इंसर्जेंसी इन कोलोनियल इण्डिया,* ड्यूक युनिवर्सिटी प्रेस, डरहम.

रणजीत गुहा (1988), *डॉमिनेंस विदाउट हैजेमनी : हिस्ट्री ऐंड पावर इन कोलोनियल इण्डिया ,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

रश्मि दुबे भटनागर (2014) ' फेमिनिनएक्रिचर, ट्रेस ऑब्जेक्ट्स ऐंड द डैथ ऑफ़ ब्रज', ज्ञानेंद्र पाण्डेय (सम्पा.), *अनआर्काइव्ड हिस्ट्री; द 'मैड' ऐंड द 'ट्रिफलिंग' इन द कोलोनियल ऐंड पोस्ट- कोलोनियल वर्ल्ड,* रौटलेज, न्युयॉर्क.

लुई अलथुसे (1968), *लेनिन ऐंड फ़िलॉसफ़ी,* नया संस्करण *लेनिन ऐंड फ़िलॉसफ़ी ऐंड अदर एसेज़* (2001), अनुवाद : बेन ब्रीवस्टर, भूमिका : फ्रेडरिक जेमेसन, मंथली रिव्यू प्रेस, न्यूयॉर्क.

लिंडसे हारलेन (1991), *रिलीजन ऐंड राजपूत वुमॅन : द इथिक्स ऑफ़ प्रोटेक्शन इन कंटेम्पररी नैरेटिव्ज़,* युनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफोर्निया प्रेस, बर्कल. रश्मि दुबे भटनागर, 'मीराज़ मिडीवल लिरिक पोएट्री इन पोस्ट-कोलोनियल इण्डिया : द रेटरिक्स ऑफ़ वुमंस राइटिंग इन डायलेक्ट ऐज़ अ सेकुलर प्रैक्सिस ऑफ़ सबाल्टर्न को-ऑथरशिप ऐंड डिसेंट', *बाउंड्री 2,* शरद् 2004, 31(3).

शाहिद अमीन तथा गौतम भद्र (1994), 'रणजीत गुहा : अ बायोग्राफ़िकल स्केच', डेविड आर्नल्ड और डेविड हार्डीमैन (सम्पा.), *सबाल्टर्न स्टडीज़,* आठवाँ खण्ड, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली : 222-225.

शैल मायाराम (2014), 'पैस्टोरल प्रेडिकामेंट्स : द गुज्जर्स इन हिस्ट्री', *कंट्रीब्यूशंस टू इण्डियन सोसिओलॅजी ,* खण्ड 48, अंक 2 : 191-222.

हैडेन वी. व्हाइट (1973), *मेटाहिस्ट्री : द हिस्टोरिकल इमैजिनेशन इन नाइनटींथ सेंचुरी युरोप,* द जॉन हॉपकिंस युनिवर्सिटी प्रेस, बाल्टीमोर.

हजारी प्रसाद द्विवेदी (2008), 'बिरहा और अकेलेपन के लिए नया अर्थ', परमानंद श्रीवास्तव (सम्पा.), *महादेवी,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद.